॥ ओ३म् ॥

दयानन्द ईश्वर भक्ति

(महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना परक वाक्य संग्रह)

(सम्पूर्ण आर्याभिविनय ग्रन्थ सहित)

स्वामी शान्तानन्द सरस्वती
(एम.ए., दर्शनाचार्य)

प्रकाशक
सन्त ओधवराम वैदिक गुरुकुल
भवानीपुर, ता. अबडासा, जि. कच्छ (गुज़रात)

सादर समर्पण

पूज्य स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

(दर्शनाचार्य, योग विशारद)

संक्षिप्त परिचय :

नाम : स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक (दर्शनाचार्य, योग विशारद)

अध्ययन : योग, सांख्य, वैशेषिक, न्याय, वेदान्त और मीमांसा दर्शन (११ उपनिषदों - ईश, कोन, कठ आदि का) व ऋग्वेद और यजुर्वेद का कुछ अध्ययन किया।

वर्तमान कार्य :

१. वेद प्रचार कार्य : देश भर में कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, औद्योगिक-प्रतिष्ठानों, क्लबों, छात्रालयों, न्यायालयों, वैज्ञानिकों, डॉक्टरों, उच्च अधिकारियों तथा न्यायाधीशों आदि बुद्धिजीवियों में विशेष रूप से मानव-धर्म का प्रचार करते हैं।

२. अध्यापन : दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड़, साबरकांठा, गुजरात में दर्शन, उपनिषद एवं वेदादि शास्त्रों का अध्यापन करते हैं।

३. शास्त्रार्थ : शास्त्रार्थों के माध्यम से धर्म का प्रचार करते हैं।

४. शंका-समाधान : स्वामी जी आध्यात्मिक शंका समाधान के विशेषज्ञ हैं।

विदेश प्रचार यात्रा : नेपाल और इंग्लैण्ड।

लेखन कार्य :

तत्त्वज्ञान, दुःख कारण और निवारण नामक पुस्तिकाएँ, क्रोध को कैसे दूर करें, सत्य बोलने से लाभ, दर्शन-सार नामक पत्रक, विभिन्न पत्रिकाओं में योग और अध्यात्म सम्बन्धी लेख।

जीवन प्रसंग :

बाल्यकाल से ही दैनिक यज्ञ, सन्ध्या, स्वाध्याय-सत्संग, आर्य समाज में जाना, विद्वानों की सेवा इत्यादि। ३-४ बार चारों वेदों का सम्पूर्ण मन्त्र-पाठ किया।

संस्कारी परिवार :

स्वामी विवेकानन्द जी परिव्राजक के परिवार के ७ व्यक्तियों ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी वैदिक विद्वान् बनकर वेद प्रचार किया, यह एक ऐतिहासिक-प्रेरक तथ्य है।

पुरस्कार एवं सम्मान :

"डॉ. मुमुक्षु आर्य महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति पुरस्कार", "स्वामी सत्यानन्द स्मृति पुरस्कार", "वैदिक प्रचार प्रसार सम्मान", "आर्य विद्वान् दर्शन सम्मान", "वेद दर्शन प्रचारक संन्यासी" सम्मान प्राप्त।

संपादक
उत्कृष्ट शंका-समाधान

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द ईश्वर भक्ति

(महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना परक वाक्यसंग्रह)
(सम्पूर्ण आर्याभिविनय ग्रन्थ सहित)

स्वामी शान्तानन्द सरस्वती
(एम.ए., दर्शनाचार्य)

* प्रकाशक *
सन्त ओधवराम वैदिक गुरुकुल
भवानीपुर, ता. अबडासा, जि. कच्छ
(गुजरात)

पुस्तक : दयानन्द ईश्वर भक्ति
प्रकाशनतिथि : गुरुपूर्णिमा २०६९, विक्रमी, जुलाई-२०१२
संस्करण : प्रथम, सृष्टि संवत् १,९६,०८,५३,११३
सहयोगी राशी : १५-०० रूपया

* मुख्य वितरक *

वैदिक संस्थान

दु.नं. ५, प्रथम मंजिल, आदर्श काम्पलेक्स,
मुरलीधर सोसायटी के सामने, ओढव, अहमदाबाद-३८२ ४१५.
दूरभाष : (०७९) २२९७२३४०

* प्राप्ति स्थान *

१. दर्शन योग महाविद्यालय
आर्यवन, रोजड़, साबरकांठा, गुजरात
२. श्री मंगलभानुशाली
ब्लोक नं. ४, निलकंठदीप कामालेन, कीरोल रोड, घाटकोपर (वे.), मुंबई-८६
३. आर्य समाज - भूज
महर्षि दयानंद मार्ग, लाल टेकरी,
जी.पी.ओ. के पीछे, भूज, कच्छ, गुजरात.
४. आर्य फ्रुट एन्ड वेजीटेबल,
आराम गृह के सामने, नखत्राणा-कच्छ, गुजरात.
५ अनामिका प्रकाशन
जी-३, पैराडाइज अपार्टमेन्ट, डी-१४८, दुर्गा मार्ग, बनीपार्क,
जयपुर-३०२ ००६ (राजस्थान)
६. वानप्रस्थ सत्यनारायण आर्य
१४, गणेशचन्द्र एवेन्यु, कोलकाता-७०० ०१३.
७. श्री भाईलालभाई पटेल
१५, युगल कुंज सोसायटी, प्रभुपार्क सोसायटी के पास,
नरोडा, अहमदाबाद-३८२ ३३०.

मुद्रक : आकृति प्रिन्टर्स, रखीयाल, अहमदाबाद. दूरभाष : ०७९-२२९१०४६७

भूमिका

आज हर व्यक्ति समस्त दुःखों, कष्टों, रोगों, विघ्नों, बाधाओं एवं सब प्रकार की चिन्ता एवं तनाव से मुक्त होना चाहता है और इसके लिए अनेकों प्रकार के उपाय कर रहा है। वास्तव में यही जीवन का लक्ष्य भी है कि समस्त दुःखों से छूटना एवं परम सुख शान्ति को प्राप्त करना। किन्तु बिना ईश्वर भक्ति के यह सम्भव नहीं। अनेक लोग ईश्वर की सत्ता पर आस्था-विश्वास तो रखते हैं तथा अपने ढंग से उसकी भक्ति भी करने का यत्न करते हैं तथापि वे दुःखों-कष्टों, तनाव-चिन्ता से छूट नहीं पा रहे हैं इसका एक प्रमुख कारण सच्चे ईश्वर की सच्ची भक्ति न करके कपोल-कल्पित ईश्वर की झूटी भक्ति करना है। यदि सच्चे ईश्वर की सच्ची भक्ति करने में व्यक्ति पुरुषार्थ करे तो वह मानव जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती वेदो के महाविद्वान् एवं ईश्वर के परमक्त थे। उनके ग्रन्थों में उपलब्ध भक्ति परक वाक्यों का संग्रह करके उसे पुस्तक का आकार प्रदान कर जन-मानस में सच्चे ईश्वर की सच्ची भक्ति भावना को स्थापित करने का यह एक लघु प्रयास है। आशा है सुधी जन इस पुस्तक से प्रेरणा प्राप्त कर अपने जीवन में ईश्वर भक्ति का संचार करके सुख-शान्ति को प्राप्त करेंगे।

गुरुवर पूज्य स्वामी विवेकानन्दजी के मुखारविन्द से दर्शन शास्त्र को पढ़कर जो दार्शनिक बुद्धि प्राप्त हुई एवं उनसे ईश्वर भक्ति योगाभ्यास द्वारा मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होने की बारम्बार प्रेरणा प्राप्त हुई इसी के फल स्वरूप स्वयं ईश्वर भक्ति में निमग्न होने तथा औरों को भी ईश्वर की ओर बढ़ाने के लिए यह पुस्तक का लेखन आरम्भ किया गया था अतः पू. स्वामी विवेकानन्द जी का धन्यवाद करते हुए गुरु पूर्णिमा के अवसर पर उनके सम्मान में यह ग्रंथ अर्पित करता हूँ। इस पुस्तक के प्रकाशन में वानप्रस्थ साधक आश्रम रोजड़ के वानप्रस्थी श्री प्रताप जी आर्य एवं गुरुकुल भवानीपुर के ट्रस्टीयों तथा देवजी लीलाधर भानुशाली परिवार की ओर से महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है अतः उनके प्रति भी हृदय से धन्यवाद प्रकट करता हूँ।

स्वामी शान्तानन्द सरस्वती

अनुक्रमणिका

क्र. विषय पृष्ठ संख्या

महर्षि दयानन्द की ईश्वर भक्ति
ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका ग्रन्थ (उपासना विषय)

हे भगवन ! आप सबमें व्यापक, शान्तस्वरूप और प्राण के भी प्राण हैं तथा ज्ञानस्वरूप और ज्ञान को देनेवाले हैं, सबके पूज्य, सबसे बड़े और सबके सहन करने वाले हैं । इस प्रकार का आपको जान के हम लोग सदा उपासना करते हैं ।

आप प्रकाश स्वरूप सब दुःखों के नाश करनेवाले तथा प्रीति के परम हेतु आनन्द स्वरुप सब लोकों के ऐश्वर्य से युक्त और सहनशक्ति वाले हैं इसलिए हम लोग आपकी उपासना निरन्तर करते हैं ।

हे परमात्मन् ! आप सब जगत में प्रसिद्ध और उत्तम हैं, सब प्रकार से इस जगत का धारण पालन और वियोग करने वाले तथा सब विद्वानों के देखने अर्थात् जानने के योग्य केवल आप ही हैं, दूसरा कोई नहीं ।

आप सब बलवाले आदि अन्त रहित तथा सब पदार्थों में अच्छी प्रकार से वर्तमान और अवकाश स्वरूप से सबके निवास स्थान हैं । इस कारण हम लोग उपासना करके आपके ही आश्रित रहते हैं ।

हे जगदीश्वर ! आप सब प्रज़ा, वाणी और कर्म इन तीनों के पति हैं तथा सर्वशक्तिमान आदि विशेषणों से युक्त हैं । जिससे आप दुष्ट प्रजा, मिथ्यारूपवाणी और पापकर्मों को विनाश करने में अत्यन्त समर्थ हैं तथा आपको सबमें व्यापक और सब सामर्थ्यवाले जान के हम लोग आपकी उपासना करते हैं ।

हे परमैश्वर्ययुक्त मंगलमय परमेश्वर ! आपकी कृपा से मुझको उपासनायोग प्राप्त हो तथा उससे मुझको सुख भी मिले । इसी प्रकार आपकी कृपा से दश इन्द्रिय, दश प्राण, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल ये अट्ठाइस सब कल्याणों में प्रवृत्त होके उपासनायोग को सदा सेवन करें तथा हम भी उस योग के द्वारा रक्षा को और रक्षा से योग को प्राप्त होना चाहते हैं । इसलिए हम लोग रात-दिन आपको नमस्कार करते हैं ।

(ईश्वर प्रार्थना विषय)

हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर ! आपकी कृपा, रक्षा और सहाय से हम लोग परस्पर एक दूसरे की रक्षा करें और हम सब लोग परम प्रीति से मिल के सबसे उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्तिराज्य आदि सामग्री से आनन्द को आपके अनुग्रह से सदा भोगें ।

हे कृपानिधे ! आपके सहाय से हम लोग एक दूसरे के सामर्थ्य को पुरुषार्थ से सदा बढ़ाते रहें और हे प्रकाशमय सब विद्या के देनेवाले परमेश्वर ! आपके सामर्थ्य से ही हम लोगों का पढ़ा और पढ़ाया सब संसार में प्रकाश को प्राप्त हो और हमारी विद्या सदा बढ़ती रहे ।

हे प्रीति के उत्पादक ! आप ऐसी कृपा कीजिए कि जिससे हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें किन्तु एक दूसरे के मित्र होके सदा वर्ते ।

हे भगवन् ! आपकी करुणा से हम लोगों के तीन ताप - एक आध्यात्मिक - जो कि ज्वरादि रोगों से शरीर में पीड़ा होती है, दूसरा आधिभौतिक - जो दूसरे प्राणियों से होता है और तीसरा आधिदैविक - जो कि मन और इन्द्रियों के विकार अशुद्धि और चंचलता से क्लेश होता है, इन तीनों तापों को आप शान्त अर्थात् निवारण कर दीजिए ।

हे सत्यस्वरूप ! हे विज्ञानमय ! हे सदानन्द स्वरूप ! हे अनन्त सामर्थ्ययुक्त ! हे परम कृपालो ! हे अनन्त विद्यामय ! हे विज्ञानप्रद ! हे परमेश्वर आप सूर्यादि सब जगत का और विद्या का प्रकाश करने वाले हैं तथा सब आनन्दों के देनेवाले हैं, हे सर्वजगदुत्पादक सर्वशक्तिमान् ! आप सब जगत को उत्पन्न करनेवाले हैं, हमारे सब जो दुःख हैं उनको और हमारे सब दुष्ट गुणों को कृपा से आप दूर कर दीजिए अर्थात् हमसे उनको, हमको उनसे सदा दूर रखिये और जो सब दुःखों से रहित कल्याण है जो कि सब सुखों से युक्त भोग है उसको हमारे लिए सब दिनों में प्राप्त कीजिए (कराइये) ।

हे सर्वशक्तिमन भगवन् ! आपकी भक्ति और कृपा से ही जो सूर्यादि लोकों का प्रकाश और विज्ञान है यह सब दिन हमको सुखदायक हो, तथा जो आकाश में पृथिवी, जल, ओषधि, वनस्पति, वट आदि वृक्ष, जो संसार के सब विद्वान्, ब्रह्म जो वेद, ये सब पदार्थ और इनसे भिन्न भी जो जगत है वे सब सुख देने वाले हमको सब काल में हों कि सब पदार्थ सब दिन हमारे अनुकूल रहें ।

हे भगवन् ! इस सब शान्ति से हमको विद्या, बुद्धि, विज्ञान, आरोग्य और सब उत्तम सहाय को कृपा से दीजिए तथा हम लोगों और सब जगत् को उत्तम गुण और सुख के दान से बढ़ाइये ।

हे परमेश्वर ! आप जिस जिस देश से जगत के रचन और पालन के अर्थ चेष्टा करते हैं उस उस देश से भय से रहित करिये, अर्थात् किसी देश से हमको किंचित् भी भय न हो, वैसे ही सब दिशाओं में जो आपकी प्रजा और पशु हैं उनसे भी हमको भयरहित करें तथा हमसे उनको सुख हो और उनको भी हमसे भय न हो, तथा आपकी प्रजा में जो मनुष्य और पशु आदि हैं, उन सबसे जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थ हैं उनको आपके अनुग्रह से हम लोग शीघ्र प्राप्त हों ।

हे भगवन् कृपानिधे ! ऋग्वेद, साभवेद, यजुर्वेद और इन तीनों के अन्तर्गत होने से अथर्ववेद भी, ये सब जिसमें स्थित होते हैं तथा जिसमें मोक्षविद्या, अर्थात् ब्रह्मविद्या और सत्यासत्य का प्रकाश होता है जिसमें सब प्रजा का चित जो स्मरण करने की वृत्ति है सो सब गंठी हुई है जैसे माला के मणिये सूत्र में गंठे हुए होते हैं और जैसे रथ के पहिये के बीच भाग में आरे लगे होते हैं कि उस काष्ट में जैसे अन्य काष्ट लगे रहते हैं, ऐसा जो मेरा मन है सो आपकी कृपा से शुद्ध हो तथा कल्याण जो मोक्ष और सत्य धर्म का अनुष्टान तथा असत्य के परित्याग करने का संकल्प जो इच्छा है इससे युक्त सदा हो । जिस मन से हम लोगों को आपके किये वेदों के सत्य अर्थ का यथावत् प्रकाश हो !

महर्षि दयानन्द की ईश्वर भक्ति
सत्यार्थ प्रकाश - सप्तम समुल्लास में

हे अग्ने ! अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर आपकी कृपा से जिस बुद्धि की उपासना विद्वान्, ज्ञानी और योगी लोग करते हैं उसी बुद्धि से युक्त हमको इसी वर्तमान समय में आप बुद्धिमान् कीजिए ।

हे रुद्र ! (दुष्टों को पाप के दुःखस्वरूप फल को देके रुलाने वाले परमेश्वर) आप हमारे छोटे बड़े जन, गर्भ माता, पिता और प्रिय बन्धुवर्ग तथा शरीरों का हनन करने के लिए प्रेरित मत कीजिए । ऐसे मार्ग से हमको चलाइये जिससे हम आपके दण्डनीय न हों ।

हे परमगुरो परमात्मन् ! आप हमको असत् मार्ग से पृथक कर सन्मार्ग में प्राप्त कीजिए । अविद्यान्धकार को छुड़ा के विद्यारूप सूर्य को प्राप्त कीजिए और मृत्यु रोग से पृथक करके मोक्ष के आनन्दरूप अमृत को प्राप्त कीजिए ।

हे दयानिधे ! आप की कृपा से जो मेरा मन जागते में दूर-दूर जाता, दिव्यगुण युक्त रहता है और वही सोते हुए मेरा मन सुषुप्ति को प्राप्त होता वा स्वप्न में दूर दूर जाने के समान व्यवहार करता सब प्रकाशकों का प्रकाशक, एक वह मेरा मन शिवसंकल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियों के अर्थ कल्याण का संकल्प करनेहारा होवे । किसी की हानि करने की इच्छायुक्त कभी न होवे ।

हे सर्वान्तर्यामी ! जिससे कर्म करनेहारे धैर्ययुक्त विद्वान् लोग यज्ञ और युद्धादि में कर्म करते हैं जो अपूर्व सामर्थ्य युक्त, पूजनीय और प्रजा के भीतर रहने वाला है, वह मेरा मन धर्म करने की इच्छायुक्त होकर अधर्म को सर्वथा छोड़ देवे ।

हे जगदीश्वर ! जिससे योगी लोग इन सब भूत, भविष्यत्, वर्तमान व्यवहारों को जानते, जो नाशरहित जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलके सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है, जिसमें ज्ञान और क्रिया है, पांच ज्ञानेन्द्रिय बुद्धि और आत्मायुक्त

रहता है, उस योगरूप यज्ञ को जिससे बढ़ाते हैं, वह मेरा मन योग विज्ञानयुक्त होकर अविद्यादि क्लेशों से पृथक रहे ।

हे परम विद्वान् परमेश्वर ! आपकी कृपा से मेरे मन में जैसे रथ के मध्य धुरा में आरा लगे रहते हैं वैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और जिसमें अथर्ववेद भी प्रतिष्ठित होता है और जिसमें सर्वज्ञ सर्वव्यापक प्रजा का साक्षी चित्त चेतन विदित होता है वह मेरा मन अविद्या का अभाव कर विद्या प्रिय सदा रहे ।

हे सर्वनियन्ता परमेश्वर ! जो मेरा मन रस्सी से घोड़ों के समान अथवा घोड़ों के नियन्ता सारथि के तुल्य मनुष्यों को अत्यन्त इधर-उधर डुलाता है, जो हृदय में प्रतिष्ठित गतिमान् और अत्यन्त वेग वाला है, वह सब इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक के धर्मपथ में सदा चलाया करे । ऐसी कृपा मुझ पर कीजिए ।

हे सुख के दाता स्वप्रकाश स्वरूप सब को जाननेहारे परमात्मन ! आप हम को श्रेष्ठ मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये और जो हममें कुटिल पापाचरण रूप मार्ग है उससे पृथक कीजिए । इसलिए हम लोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुत सी स्तुति करते हैं कि आप हमको पवित्र करें ।

महर्षि दयानन्द की ईश्वर भक्ति
यजुर्वेद भाष्यम् - ३६ वें और ३७ वें अध्याय में

हे भगवन् परमात्मन् ! जिस युक्ति से आप धर्मात्माओं को आनन्दित करते हैं, उनकी सब ओर से रक्षा करते हैं उस युक्ति को हमको जताइये ।

हे जगदीश्वर ! जिससे आप सर्वत्र सब ओर से अभिव्याप्त मनुष्य, पशु आदि को सुख चाहनेवाले हैं इससे सबको उपासना करने योग्य हैं ।

हे परमेश्वर ! हम लोग आपके शुभ गुण, कर्म स्वभावों के तुल्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव करने के लिए आपको नमस्कार करते हैं और यह निश्चित जानते हैं कि अधर्मियों को आपकी शिक्षा पीड़ा और धर्मात्माओं को आनन्दित करती है इसलिए मंगल स्वरूप आपकी ही हम लोग उपासना करते हैं ।

हे परमेश्वर! आप जिस कारण सबमें अभिव्याप्त हैं इससे हमको और दूसरों को सब कालों और देशों में सब प्राणियों से निर्भय कीजिए।

हे परमेश्वर! आपकी कृपा और आपके विज्ञान से आपकी रचना को देखते हुए आपके साथ युक्त निरोग और सावधान हुए हम लोग समस्त इन्द्रियों से युक्त सौ वर्ष से भी अधिक जीवें, सत्य शास्त्रों और आपके गुणों को सुनें, वेदादि को पढ़ावें, सत्य का उपदेश करें, कभी किसी वस्तु के बिना पराधीन न हों, सदैव-स्वतन्त्र हुए निरन्तर आनन्द भोगें और दूसरों को आनन्दित करें।

हे जगदीश्वर! आप हमारे पिता, स्वामी, बन्धु, मित्र और रक्षक हैं, इससे आपकी हम निरन्तर उपासना करते हैं।

महर्षि दयानन्द की ईश्वर भक्ति
संस्कार विधि ग्रन्थ के संन्यास प्रकरण में

हे अविद्यादि क्लेशों के नाश करनेवाले पवित्र स्वरूप, सर्वानन्ददायक परमात्मन्! जहां तेरे स्वरूप में निरन्तर व्यापक तेरा तेज है, जिस ज्ञान से देखने योग्य तुझमें नित्य सुख स्थित है, उस जन्म मरण और नाश से रहित द्रष्टव्य अपने स्वरूप में आप मुझे परमैश्वर्य प्राप्ति के लिए कृपा से धारण कीजिए और मुझ पर माता के समान कृपाभाव से आनन्द की वर्षा कीजिए।

हे आनन्दप्रद परमात्मन्! जिस आपमें सूर्य का प्रकाश प्रकाशमान हो रहा है, जिस आपमें बिजली अथवा बुरी कामना की रुकावट है, जिस आपमें वे कारणरूप बड़े व्यापक आकाशस्थ प्राणप्रद वायु हैं उस अपने स्वरूप में मुझे मोक्ष में प्राप्त कीजिए। परमैश्वर्य के लिए आर्द्रभाव से आप मुझे प्राप्त होओ।

हे परमात्मन्! जिस आपमें इच्छा के अनुकूल स्वतन्त्र विहरना है, जिस त्रिविध अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख से रहित तीन-सूर्य, विद्युत और भौम्य अग्नि से प्रकाशित सुख स्वरूप आपमें कामना करने के योग्य

शुद्ध कामनावाले यथार्थ ज्ञानयुक्त शुद्ध विज्ञानयुक्त मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्ध पुरुष विचरते हैं उस अपने स्वरूप में मुझे मोक्ष में प्राप्त कीजिए और उस परम आनन्दैश्वर्य के लिए कृपा से प्राप्त होओ ।

हे निष्कामानन्दप्रद, सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मन् जिस आपमें सब कामना और अभिलाषा छूट जाती है और जिस आपमें सबसे बड़े प्रकाशमान सूर्य का विशिष्ट सुख और जिस आपमें अपना ही धारण और जिस आपमें पूर्ण तृप्ति है, उस अपने स्वरूप में मुझे प्राप्त मुक्तिवाला कीजिए तथा सब दुःख विदारण के लिए आप मुझ पर करुणावृत्ति कीजिए ।

हे सर्वानन्दयुक्त जगदीश्वर ! जिस आपमें सम्पूर्ण समृद्धि और सम्पूर्ण हर्ष, सम्पूर्ण प्रसन्नता और प्रकृष्ट प्रसन्नता स्थित हैं, जिस आपमें अभिलाषी पुरुष की सब कामना प्राप्त होती है उसी अपने स्वरूप में परमैश्वर्य के लिए मुझे जन्म-मृत्यु के दुःख से रहित मोक्ष प्राप्तियुक्त कि जिससे मुक्ति के समय के मध्य में नहीं आना पड़ता, उस मुक्ति की प्राप्तिवाला कीजिए और इसी प्रकार सब जीवों को सब ओर से प्राप्त हूजिए ।

हे स्वप्रकाशस्वरूप ! सब दुःखों के दाहक, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप योग विज्ञानरूप धन की प्राप्ति के लिए वेदोक्त धर्ममार्ग से हमें सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्मों को अपनी कृपा से प्राप्त कीजिए और हमसे कुटिल पक्षपात सहित अपराध, पाप-कर्म को दूर रखिये और इस अधर्माचरण से हमें सदा दूर रखिये इसलिए आप ही की बहुत प्रकार नमस्कार पूर्वक प्रशंसा को नित्य किया करें ।

हे सर्वदुःखविदारक परमात्मन् ! तू मुझे संन्यास मार्ग में बढ़ा । हे सर्वमित्र ! तू सर्वसुदृढ़, आप्त पुरुष की दृष्टि से मुझे सबका मित्र बना । जिससे सब प्राणिमात्र मुझे मित्र की दृष्टि से देखें और मैं मित्र की दृष्टि से सब जीवों को देखूँ । इस प्रकार आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से हम लोग एक दूसरे को सुहृदभाव की दृष्टि से देखते रहें ।

हे जगदीश्वर! सर्वशक्तिमन्, सर्वान्तर्यामिन्, दयालो, न्यायकारिन्, सच्चिदानन्द, अनन्त, नित्य, शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव, अजर, अमर, पवित्र, परमात्मान् आप अपनी कृपा से संन्यासियों को पूर्वोक्त कर्मों में प्रवृत्त रखके परम मुक्ति-सुख को प्राप्त कराते रहिये।

संस्कार विधि (वानप्रस्थ प्रकरण)

हे नियमपालकेश्वर! दीक्षा को प्राप्त होता हुआ मैं तुझमें स्थिर होके ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का धारण और उसकी सामग्री सत्य की धारणा को और उसके उपायों को प्राप्त होता हूँ। इसलिए अग्नि में जैसे समिधा को धारण करता हूँ वैसे विद्या और व्रत को धारण कर प्रज्वलित करता हूँ और वैसे ही तुझे अपने आत्मा से धारण करता और सदा प्रकाशित करता हूँ।

संस्कार विधि (गृहाश्रम प्रकरण)

हे परमेश्वर दयानिधे! आपकी कृपा से जपोपासनादि कर्मों को करके हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को शीघ्र प्राप्त होवें।

हे भजनीय स्वरूप सबके उत्पादक, सत्याचार में प्रेरक ऐश्वर्यप्रद सत्य धन को देनेहारे सत्याचरण करनेहारों को ऐश्वर्यप्रद सत्य धन को देनेहारे सत्याचरण करनेहारों को ऐश्वर्यदाता आप परमेश्वर! हमको इस प्रज्ञा को दीजिए और उसके दान से हमारी रक्षा कीजिए। हे भग - (भजनीयस्वरूप) आप गाय आदि और घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्यश्री को हमारे लिए प्रकट कीजिए, हे भग - (भजनीयस्वरूप) आपकी कृपा से हम लोग उत्तम मनुष्यों से बहुत वीर मनुष्यवाले अच्छे प्रकार होवें।

हे भगवन्! आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से हम लोग इसी समय प्रकर्षता, उत्तमता की प्राप्ति में और इन दिनों के मध्य में ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान होवें और हे परमपूजित असंख्य धन देनेहारे! सूर्यलोक के उदय में पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप्त लोगों की अच्छी उत्तम प्रज्ञा और सुमति में हम लोग सदा प्रवृत्त रहें।

हे सकलैश्वर्य सम्पन्न जगदीश्वर ! जिससे उस आपकी सब सज्जन निश्चय करके प्रशंसा करते हैं, सो आप हे ऐश्वर्यप्रद ! इस संसार और हमारे गृहाश्रम में अग्रग्रामी और आगे आगे सत्य कर्मों में बढ़ानेहारे हूजिए; और जिससे सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता होने से आप ही हमारे पूजनीय देव हूजिए उसी हेतु से हम विद्वान् लोग सकलैश्वर्य सम्पन्न होके सब संसार के उपकार में तन, मन, धन से प्रवृत्त होवें ।

संस्कार विधि (ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना विषय)

हे सकल जगत के उत्पत्तिकर्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त शुद्धस्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए । जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है वह सब हमको प्राप्त कीजिए । (कीजिए = कराइये)

हे स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करनेहारे सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जिससे सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके हम लोगों को विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए अच्छे, धर्मयुक्त, आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइये और हमसे कुटिलता युक्त पापरूप कर्म को दूर कीजिए । इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुतिरूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ।

महर्षि दयानन्द की ईश्वर भक्ति
गोकरुणानिधि पुस्तक में

पशु हत्या जैसे हानिकारक कर्मों को छोड़ने एवं उनके प्राणों की रक्षा हेतु स्वामी जी गोकरुणानिधि पुस्तक में लिखते हैं -

सर्वशक्तिमान जगदीश्वर हम और आप पर पूर्ण कृपा करे कि जिससे हम और आप लोग विश्व के हानिकारक कर्मों को छोड़ सर्वोपकारक कर्मों को करके सब लोग आनन्द में रहें । इन सब बातों को सुन मत डालना किन्तु सुन रखना । इन अनाथ पशुओं के प्राणों को शीघ्र बचाना ।

गोकरुणानिधि (भूमिका)

सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर इस सृष्टि में मनुष्यों के आत्माओं में अपनी दया और न्याय को प्रकाशित करे कि जिससे ये सब दया और न्याययुक्त होकर सर्वदा सर्वोपकारक काम करें और स्वार्थपन से पक्षपातयुक्त होकर कृपापात्र गाय आदि पशुओं का विनाश न करें कि जिससे दुग्ध आदि पदार्थों और खेती आदि क्रियाओं की सिद्धि से युक्त होकर सब मनुष्य आनन्द में रहें।

महर्षि दयानन्द की ईश्वर भक्ति
पञ्चमहायज्ञविधि पुस्तक में

हे ईश्वर दयानिधे ! आपकी कृपा से जो जो उत्तम काम हम लोग करते हैं, वे सब आपके अर्पण हैं। जिससे हम लोग आपको प्राप्त होके धर्म - जो सत्य न्याय का आचरण करना है, अर्थ - जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, काम-जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है और मोक्ष जो सब दुःखों से छूटकर सदा आनन्द में रहना है, इन चार पदार्थों की सिद्धि हमको शीघ्र प्राप्त हो।

(सन्ध्योपासनम् प्रकरण)

हे जातवेद परमेश्वर ! आप सब प्रकार से मुझको पवित्र करें। जिनका चित्त आप में है तथा जो आपकी आज्ञा पालते हैं वे विद्वान् श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष भी विद्यादान से मुझको पवित्र करें। उसी प्रकार आपका दिया जो विशेष ज्ञान वा आपके विषय का ध्यान उससे हमारी बुद्धि पवित्र हो। और संसार के सब जीव आपकी कृपा से पवित्र और आनन्द युक्त हों।

ओ३म्

तत् सत् परब्रह्मणे नमः ॥

अथार्याभिविनयः प्रारम्भः ॥

ओं । शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्य्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥१॥

ऋ. अ. १ । अ. ६ । व. १८ । मं. ९ ॥

व्याख्यान - हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्त स्वभाव, अद्वितीयानुपमजगदादिकारण, हे अज निराकार सर्वशक्तिमान, न्यायकारिन्, हे जगदीश, सर्वजगदुत्पादकाधार, हे सनातन सर्वमङ्गलमय, सर्वस्वामिन्, हे करुणाकरास्मत्पितः परमसहायक, हे सर्वानन्दप्रद, सकलदुःखविनाशक, हे अविद्यान्धकारनिर्मूलक, विद्यार्कप्रकाशक, हे परमैश्वर्यदायक, साम्राज्यप्रसारक, हे अधमोद्धारक, पतितपावन, मान्यप्रद, हे विश्वविनोदक, विनयविधिप्रद, हे विश्वास विलासक, हे निरंजन, नायक, शर्मद, नरेश, निर्विकार, हे सर्वान्तर्यामिन्, सदुपदेशक, मोक्षप्रद, हे सत्यगुणाकर, निर्मल, निरीह, निरामय, निरुपद्रव, दीनदयाकर परमसुखदायक, हे दारिद्र्यविनाशक, निर्वैरविधायक, सुनीतिवर्धक, हे प्रीतिसाधक, राज्यविधायक, शत्रुविनाशक, हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक, हे सुधर्मसुप्रापक, हे अर्थसुसाधक, सुकामवर्द्धक, ज्ञानप्रद, हे सन्ततिपालक, धर्म्मसुशिक्षक, रोगविनाशक, हे पुरुषार्थप्रापक, दुर्गुणनाशक, सिद्धिप्रद, हे सज्जनसुखद, दुष्टसुताड़न, गर्वकुक्रोधकुलोभविदारक, हे परमेश, परेश, परमात्मन्, परब्रह्मन्, हे जगदानन्दक, परमेश्वर व्यापक सूक्ष्माच्छेद्य, हे अजरामृताभय निर्बन्धनादे, हे अप्रतिमप्रभाव, निर्गुणातुल, विश्वाद्य, विश्ववन्द्य, विद्वद्विलासक, इत्याद्यनन्तविशेषणवाच्य, हे मंगलप्रदेश्वर ! आप सर्वथा सबके निश्चित मित्र हो, हमको सत्यसुखदायक सर्वदा हो, हे सर्वोत्कृष्ट, स्वीकरणीय, वरेश्वर ! आप वरुण अर्थात् सबसे परमोत्तम हो, सो आप हम को परमसुखदायक हो, हे पक्षपातरहित, धर्म्मन्यायकारिन् ! आप अर्य्यमा (यमराज) हो इससे हमारे लिये न्याययुक्त सुख देनेवाले आप ही हो, हे परमैश्वर्य्यवन्, इन्द्रेश्वर ! आप हमको परमैश्वर्ययुक्त शीघ्र स्थिर सुख दीजिये । हे महाविद्यावाचोधिपते,

बृहस्पते, परमात्मन् ! हम लोगों को (बृहत्) सबसे बड़े सुख को देनेवाले आप ही हो, हे सर्वव्यापक, अनंत पराक्रमेश्वर विष्णो ! आप हमको अनंत सुख देओ, जो कुछ मांगेंगे सो आपसे ही हम लोग मांगेंगे, सब सुखों का देनेवाला आपके विना कोई नहीं है, सर्वथा हम लोगों को आपका ही आश्रय है । अन्य किसी का नहीं क्योंकि सर्वशक्तिमान् न्यायकारी दयामय सबसे बड़े पिता को छोड़ के नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे, आपका तो स्वभाव ही है कि अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते सो आप सदैव हमको सुख देंगे, यह हम लोगों को दृढ़ निश्चय है ॥१॥

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥२॥ ऋ. १ । १ । १ । १ ॥

व्याख्यान - हे वन्द्येश्वराग्ने ! आप ज्ञानस्वरूप हो, आपकी मैं स्तुति करता हूँ ।

सब मनुष्यों के प्रति परमात्मा का यह उपदेश है, हे मनुष्यो ! तुम लोग इस प्रकार से मेरी स्तुति, प्रार्थना और उपासनादि करो जैसे पिता वा गुरु अपने पुत्र वा शिष्य को शिक्षा करता है कि तुम पिता वा गुरु के विषय में इस प्रकार से स्तुति आदि का वर्तमान करना, वैसे सबके पिता और परम गुरु ईश्वर ने हमको कृपा से सब व्यवहार और विद्यादि पदार्थों का उपदेश किया है जिससे हमको व्यवहार ज्ञान और परमार्थ ज्ञान होने से अत्यन्त सुख हो । जैसे सब का आदिकारण ईश्वर है वैसे परम विद्या वेद का भी आदिकारण ईश्वर है ।

हे सर्वहितोपकारक ! आप "पुरोहितम्" सब जगत् के हितसाधक हो, हे यज्ञदेव ! सब मनुष्यों के पूज्यतम और ज्ञान-यज्ञादि के लिये कमनीयतम हो 'ऋत्विजम्' सब ऋतु वसन्त आदि के रचक, अर्थात् जिस समय जैसा सुख चाहिये उस सुख के सम्पादक आप ही हो "होतारम्" सब जगत् को समस्त योग और क्षेम के देनेवाले हो और प्रलय समय में कारण में सब जगत् का होम करनेवाले हो "रत्नधातमम्" रत्न अर्थात् रमणीय पृथिव्यादिकों के धारण, रचन करनेवाले तथा अपने सेवकों के लिये रत्नों के धारण करनेवाले एक आप ही हो । हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! इसलिये मैं वारम्वार आपकी स्तुति करता हूं इसको आप स्वीकार कीजिये, जिससे हम लोग आपके कृपापात्र होके सदैव आनन्द में रहें ॥२॥

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥३॥ ऋ. १ । १। १ । ३ ॥

व्याख्यान - हे महादातः, ईश्वराग्ने ! आप की कृपा से स्तुति करनेवाला मनुष्य "रयिम्" उस विद्यादि धन तथा सुवर्णादि धन को अवश्य प्राप्त होता है कि जो धन प्रतिदिन "पोषमेव" महापुष्टि करने और सत्कीर्ति को बढ़ानेवाला तथा जिससे विद्या, शौर्य्य, धैर्य्य, चातुर्य, बल, पराक्रम और दृढाङ्ग, धर्मात्मा, न्याययुक्त, अत्यन्त वीर पुरुष प्राप्त हों वैसे सुवर्ण रत्नादि तथा चक्रवर्त्ती राज्य और विज्ञानरूप धन को प्राप्त होऊं तथा आपकी कृपा से सदैव धर्मात्मा होके अत्यन्त सुखी रहूं ॥३॥

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥४॥ ऋ. १ । १ । १ । २ ॥

व्याख्यान - हे सब मनुष्यों के स्तुति करने योग्य ईश्वराग्ने ! "पूर्वेभिः" विद्या पढ़े हुए प्राचीन "ऋषिभिः" मन्त्रार्थ देखनेवाले विद्वान् और "नूतनैः" वेदार्थ पढ़नेवाले नवीन ब्रह्मचारियों से "ईड्यः" स्तुति के योग्य "उत" और जो हम लोग मनुष्य विद्वान् वा मूर्ख हैं उनसे भी अवश्य आप ही स्तुति के योग्य हो सो स्तुति को प्राप्त हुए आप हमारे और सब संसार के सुख के लिये दिव्यगुण अर्थात् विद्यादि को कृपा से प्राप्त करो, आप ही सबके इष्टदेव हो ॥४॥

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरा गमत् ॥५॥ ऋ. १ । १ । १ । ५ ॥

व्याख्यान - हे सर्वदृक् ! सबको देखनेवाले "क्रतुः" सब जगत् के जनक "सत्य" अविनाशी अर्थात् कभी जिनका नाश नहीं होता, "चित्रश्रवस्तमः" आश्चर्य्यश्रवणादि, आश्चर्य्यगुण, आश्चर्य्यशक्ति, आश्चर्यरूपवान् और अत्यन्त उत्तम आप हो, जिन आपके तुल्य वा आप से बड़ा कोई नहीं है, हे जगदीश ! "देवेभिः" दिव्य गुणों के सह वर्तमान हमारे हृदय में आप प्रकट हों, सब जगत् में भी प्रकाशित हों जिससे हम और हमारा राज्य दिव्यगुणयुक्त हो । वह राज्य आपका ही है, हम तो केवल आपके पुत्र तथा भृत्यवत् हैं ॥५॥

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥६॥ ऋ. १ । १ । २ । १ ॥

व्याख्यान - हे "अङ्ग" मित्र ! जो आपको आत्मादि दान करता है उसको "भद्रम्" व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख अवश्य देते हो, हे "अङ्गिरः" प्राणप्रिय ! यह आप का सत्यव्रत है कि स्वभक्तों को परमानन्द देना, यही आपका स्वभाव हमको अत्यन्त सुखकारक है, आप मुझको ऐहिक और पारमार्थिक इन दोनों सुखों का दान शीघ्र दीजिये जिससे सब दुःख दूर हों । हमको सदा सुख ही रहे ॥६॥

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरङ्कृताः ।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥७॥ ऋ. १ । १ । ३ । १ ॥

व्याख्यान - हे अनन्तबल परेश वायो दर्शनीय ! आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त हो । हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से सोम (सोमवल्यादि) ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं वे आपके लिय "अरङ्कृताः" अलङ्कृत अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं और वे सब आपके समर्पण किये गये हैं । उनको आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो) । हम दीनों की दीनता सुनकर जैसे पिता को पुत्र छोटी चीज समर्पण करता है उस पर पिता अत्यन्त प्रसन्न होता है वैसे आप हम पर होओ ॥७॥

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥८॥ ऋ. १ । १ । ६ । १० ॥

व्याख्यान - हे वाक्पते ! सर्वविद्यामय ! हमको आपकी कृपा से "सरस्वती" सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्त वाणी प्राप्त हो, "वाजेभिः" तथा उत्कृष्ट अन्नादि के साथ वर्तमान "वाजिनीवती" सर्वोत्तम क्रिया विज्ञानयुक्त "पावका" पवित्रस्वरूप और पवित्र करनेवाली सत्यभाषणमय मङ्गलकारक वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आपके अनुग्रह से परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्तमान "वसुः" निधिस्वरूप यह वाणी "यज्ञं वष्टु" सर्वशास्त्रबोध और पूजनीयतम आपके विज्ञान की कामनायुक्त सदैव हो, जिससे हमारी सब मूर्खता नष्ट हो और हम महापाण्डित्ययुक्त हों ॥८॥

पुरुतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥९॥ ऋ. १ । १ । ९ । २ ॥

व्याख्यान - हे परात्पर परमात्मन् ! आप "पुरुतमम्" अत्यन्तोत्तम और सर्वशत्रुविनाशक हो तथा बहुविध जगत् के पदार्थों के "ईशान" स्वामी और उत्पादक हो, "वार्य्याणाम्" वर, वरणीय, परमानन्द मोक्षादि पदार्थों के भी ईशान हो, "सोमे" और उत्पत्तिस्थान संसार आपसे उत्पन्न होने से "इन्द्रम्" परमैश्वर्य्यवान् आपको हृदय में अत्यन्त प्रेम से गावें, (यथावत्) स्तुति करें जिससे आपकी कृपा से हम लोगों का भी परमैश्वर्य्य बढ़ता जाय और परमानन्द को प्राप्त हों ॥९॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥१०॥

ऋ. १ । ६ । १५ । ५ ॥

व्याख्यान - हे सर्वाधिस्वामिन् ! आप ही चर और अचर जगत् के ईशान (रचनेवाले) "धियंजिन्वम्" सर्वविद्यामय विज्ञानस्वरूप बुद्धि को प्रकाशित करनेवाले प्रीणनीयस्वरूप "पूषा" सब के पोषक हो, उन आपका हम "नः, अवसे" अपनी रक्षा के लिये "हूमहे" आह्वान करते हैं । "यथा" जिस प्रकार से आप हमारे विद्यादि धनों की वृद्धि वा रक्षा के लिये "अदब्धः रक्षिता" निरालस रक्षा करने में तत्पर हो वैसे ही कृपा करके आप "स्वस्तये" हमारी स्वस्थता के लिये "पायुः" निरन्तर रक्षक (विनाशनिवारक) हो, आपसे पालित हम लोग, सदैव उत्तम कामों में उन्नति और आनन्द को प्राप्त हों ॥१०॥

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥११॥ ऋ. १ । २ । ७ । १६ ॥

व्याख्यान - हे "देवाः" विद्वानो ! "विष्णुः" सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने सब जीवों को पाप तथा पुण्य का फल भोगने और सब पदार्थों के स्थित होने के लिये, पृथिवी से ले के सप्तविध लोक "धामभिः" अर्थात् ऊंचे-नीचे स्थानों से संयुक्त बनाये तथा गायत्र्यादि सात छन्दों से विस्तृत विद्यायुक्त वेद को भी

बनाया उन लोकों के साथ वर्तमान व्यापक ईश्वर ने "यतः" जिस सामर्थ्य से सब लोकों को रचा है "अतः" (सामर्थ्यात्) उस सामर्थ्य से हम लोगों की रक्षा करे । हे विद्वानो ! तुम लोग भी उसी विष्णु के उपदेश से हमारी रक्षा करो । कैसा है वह विष्णु ? जिसने इस सब जगत् को "विचक्रमे" विविध प्रकार से रचा है, उसकी नित्य भक्ति करो ॥११॥

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥१२॥

ऋ. १ । ३ । १० । १५ ॥

व्याख्यान - हे सर्वशत्रुदाहकाग्ने परमेश्वर ! राक्षस हिंसाशील दुष्टस्वभाव देहधारियों से "नः" हमारी "पाहि" पालना करो "धूर्तेरराव्णः" कृपण जो धूर्त उस मनुष्य से भी हमारी रक्षा करो । जो हमको मारने लगे तथा जो मारने की इच्छा करता है, हे महातेज बलवत्तम ! उन सबसे हमारी रक्षा करो ॥१२॥

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१३॥

ऋ. १ । ४ । १४ । १२ ॥

व्याख्यान - हे परमैश्वर्य्यवन् परात्मन् ! आकाश लोक के पार में तथा भीतर अपने ऐश्वर्य और बल से विराजमान होके दुष्टों के मन को घर्षण तिरस्कार करते हुए सब सब जगत् तथा विशेष हम लोगों के "अवसे" सम्यक् रक्षण के लिये "त्वम्" आप सावधान हो रहे हो इससे हम निर्भय हो के आनन्द कर रहे हैं, किञ्च "दिवम्" परमाकाश "भूमिम्" भूमि तथा "स्वः" सुखविशेष मध्यस्थ लोक इन सबों को अपने सामर्थ्य से ही रच के यथावत् धारण कर रहे हो, "परिभूः एषि" सब पर वर्तमान और सबको प्राप्त हो रहे हो, "आदिवम्" द्योतनात्मक सूर्यादि लोक "आपः" अन्तरिक्षलोक और जल इन सबके प्रतिमान (परिमाण) कर्ता आप ही हो, तथा आप अपरिमेय हो, कृपा करके हमको अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिये ॥१३॥

विजनीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥१४॥

ऋ. १ । ४ । १० । ८ ॥

व्याख्यान - हे यथायोग्य सबको जाननेवाले ईश्वर! आप "आर्यान्" विद्या धर्म्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरणयुक्त आर्यों को जानो, "ये च दस्यवः" और जो नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषयलम्पट, हिंसादिदोषयुक्त उत्तम कर्म्म में विघ्न करनेवाले, स्वार्थी, स्वार्थसाधन में तत्पर, वेदविद्याविरोधी, अनार्य (अनाड़ी) मनुष्य "बर्हिष्मते" सर्वोपकारक यज्ञ के विध्वंस करनेवाले हैं इन सब दुष्टों को आप "रन्धय" (समूलान् विनाशय) मूलसहित नष्ट कर दीजिये और "शासदव्रतान्" ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासादि धर्म्मानुष्ठानव्रतरहित वेदमार्गोच्छेदक अनाचारियों को यथायोग्य शासन करो (शीघ्र उन पर दण्ड निपातन करो) जिससे वे भी शिक्षायुक्त हो के शिष्ट हों अथवा उनका प्राणान्त हो जाय किंवा हमारे वश में ही रहें, "शाकी" तथा जीव को परम शक्तियुक्त शक्ति देने और उत्तम कामों में प्रेरणा करनेवाले हो, आप हमारे दुष्ट कामों से निरोधक हो, मैं भी "सधमादेषु" उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ "विश्वेत्ता ते" तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्म्मों की "चाकन" कामना करता हूँ सो आप पूरी करें ॥१४॥

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥१५॥

ऋ. १ । ४ । १४ । १४ ॥

व्याख्यान - हे परमैश्वर्ययुक्तेश्वर ! आप इन्द्र हो, हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा का अन्त इतना है यह न हो, उसकी व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण कोई नहीं कर सकता तथा "द्यावा" अर्थात् सूर्य्यादिलोक सर्वोपरि आकाश तथा "पृथिवी" मध्य निकृष्ट-लोक ये कोई उसके आदि अन्त को नहीं पाते क्योंकि "अनुव्यचः" वह सबके बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) हो रहा है तथा "न सिन्धवः" अन्तरिक्ष में जो दिव्यजल तथा सब लोक सो भी अन्त नहीं पा सकते "नोत स्ववृष्टिं मदे" वृष्टिप्रहार से युद्ध करता हुआ वृत्र (मेघ) तथा बिजुली गर्जन आदि भी ईश्वर का पार नहीं पा सकते, हे परमात्मन् ! आपका पार कौन पा सके ? क्योंकि "एकः"

एक (अपने से भिन्न सहायरहित) स्वसामर्थ्य से ही "विश्वम्" सब जगत् को "आनुषक्" आनुषक्त अर्थात् उसमें व्याप्त होते और "चकृषे" (कृतवान्) आपने ही उत्पन्न किया है, फिर जगत् के पदार्थ आपका पार कैसे पा सकें तथा (अन्यत्) आप जगत् रूप कभी नहीं बनते, न अपने में से जगत् को रचते हो किन्तु अनन्त अपने सामर्थ्य से ही जगत् का रचन, धारण और प्रलय यथाकाल में करते हो, इससे आपका सहाय हम लोगों को सदैव है ।।१५।।

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ।।१६।।

ऋ. १ । ३ । १० । १४ ।।

व्याख्यान - हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्म ! आप (ऊर्ध्वः) सबसे उत्कृष्ट हो, हमको कृपा से उत्कृष्ट गुणवाले करो तथा ऊर्ध्व देश में हमारी रक्षा करो, हे सर्वपापप्रणाशकेश्वर ! हमको "केतुना" विज्ञान अर्थात् विविध विद्यादान देके "अंहसः" अविद्यादि महापाप से "नि पाहि" (नितरां पाहि) सदैव अलग रक्खो तथा "विश्वम्" इस सकल संसार का भी नित्य पालन करो, हे सत्यमित्रन्यायकारिन् जो कोई प्राणी "अत्रिणम्" हमसे शत्रुता करता है उसको और काम क्रोधादि शत्रुओं को आप "सन्दह" सम्यक् भस्मीभूत करो (अच्छे प्रकार जलाओ), "कृधी न ऊर्ध्वान्" हे कृपानिधे ! हमको विद्या, शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविधधन ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, स्वदेशसुखसंपादनादि गुणों में सब नरदेहधारियों से अधिक उत्तम करो तथा "चरथाय, जीवसे" सबसे अधिक आनन्द, भोग, सब देशों में अव्याहतगमन (इच्छानुकूल जाना-आना), आरोग्य, देह, शुद्ध मानसबल और विज्ञान इत्यादि के लिये हमको उत्तमता और अपनी पालनायुक्त करो, "विदा" विद्यादि उत्तमोत्तम धन "देवेषु" विद्वानों के बीच में प्राप्त करो अर्थात् विद्वानों के मध्य में भी उत्तम प्रतिष्ठायुक्त सदैव हमको रक्खो ।।१६।।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ।।१७।।

ऋ. १ । ६ । १६ । १० ।।

व्याख्यान - हे त्रैकाल्याबाधेश्वर ! "अदितिर्द्यौः" आप सदैव विनाशरहित तथा स्वप्रकाशस्वरूप हो, "अदितिरन्तरिक्षम्" अविकृत (विकार को न प्राप्त) और सबके अधिष्ठाता हो "अदितिर्माता" आप प्राप्त मोक्ष जीवों को अविनश्वर (विनाशरहित) सुख देने और अत्यन्त मान करनेवाले हो "स पिता" सो अविनाशीस्वरूप हम सब लोगों के पिता (जनक) और पालक हो और "स पुत्रः" सो ईश्वर आप मुमुक्षु धर्मात्मा विद्वानों को नरकादि दुःखों से पवित्र और त्राण (रक्षण) करनेवाले हो "विश्वे देवा अदितिः" सब दिव्यगुण (विश्व का धारण, रचन, मारण, पालन आदि कार्यों को करनेवाले) आप अविनाशी परमात्मा ही हैं "पंचजना अदितिः" पंच प्राण जो जगत् के जीवनहेतु वे भी आपके रचे और आपके नाम भी हैं "जातमदितिः" वही एक चेतन ब्रह्म आप सदा प्रादुर्भूत हैं और सब कभी प्रादुर्भूत कभी अप्रादुर्भूत (विनाशभूत) भी हो जाते हैं "अदितिर्जनित्वम्" वे ही अविनाशीस्वरूप ईश्वर आप सब जगत् के (जनित्वम्) जन्म का हेतु हैं और कोई नहीं ।।१७।।

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् ।
अर्यमा देवैः सजोषाः ।।१८।। ऋ. १ । ६ । १७ । १ ।।

व्याख्यान - हे महाराजाधिराज परमेश्वर ! आप हमको "ऋजु." सरल (शुद्ध) कोमलत्वादिगुणविशिष्ट चक्रवर्ती राजाओं की नीति को "नयतु" कृपादृष्टि से प्राप्त करो, आप "वरुणः" सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो सो हमको वरराज्य, वरविद्या, वरनीति देओ तथा सबके मित्र शत्रुतारहित हो, हमको भी आप मित्रगुणयुक्त न्यायाधीश कीजिये तथा आप सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हो, हमको भी सत्यविद्या से युक्त सुनीति दे के साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये तथा आप "अर्य्यमा" (यमराज) प्रियाप्रिय को छोड़के न्याय में वर्तमान हो, सब संसार के जीवों के पाप और पुण्यों की यथायोग्य व्यवस्था करनेवाले हो सो हमको भी आप तादृश करें जिससे "देवैः, सजोषाः" आपकी कृपा से विद्वानों वा दिव्यगुणों के साथ उत्तमप्रीति-युक्त आप में रमण और आपका सेवन करनेवाले हों । हे कृपासिन्धो भगवन् ! हम पर सहायता करो जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े ।।१८।।

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा ।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ।।१९।। ऋ. १ । ६ । १९ । ५ ।।

व्याख्यान - हे सोम राजन् सत्पते परमेश्वर ! तुम सोम, सबका सार निकालनेहारे प्राप्त रूप, शांतात्मा हो तथा सत्पुरुषों का प्रतिपालन करनेवाले हो, तुम्हीं सबके राजा "उत" और "वृत्रहा" मेघ के रचक, धारक और मारक हो, भद्रस्वरूप भद्र करनेवाले और "क्रतुः" सब जगत् के कर्ता आप ही हो ॥१९॥

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः ।
न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥२०॥ ऋ. १ । ६ । २० । ८ ॥

व्याख्यान - हे सोम राजन्नीश्वर ! तुम "अघायतः" जो कोई प्राणी हममें पापी और पाप करने की इच्छा करनेवाले हों "विश्वतः" उन सब प्राणियों से हमारी "रक्ष" रक्षा करो, जिसके आप सगे मित्र हो "न, रिष्येत्" वह कभी विनष्ट नहीं होना किन्तु हमको आपकी सहायता से तिलमात्र भी दुःख वा भय कभी नहीं होगा, जो आपका मित्र और जिसके आप मित्र हो उसको दुःख क्योंकर हो ॥२०॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥२१॥ ऋ. १ । २ । ७ । २० ॥

व्याख्यान - हे विद्वानो और मुमुक्षु जीवो ! विष्णु का जो परम अत्यन्तोत्कृष्ट पद (पदनीय) सबके जानने योग्य, जिसको प्राप्त होके पूर्णानन्द में रहते हैं फिर वहां से शीघ्र दुःख में नहीं गिरते, उस पद को "सूरयः" धर्मात्मा जितेन्द्रिय, सबके हितकारक विद्वान् लोग यथावत् अच्छे विचार से देखते हैं, वह परमेश्वर का पद है। किस दृष्टान्त से कि जैसे आकाश में "चक्षु" नेत्र की व्याप्ति वा सूर्य का प्रकाश सब ओर से व्याप्त है वैसे ही "दिवीव चक्षुराततम्" परब्रह्म सब जगह में परिपूर्ण एकरस भर रहा है। वही परमपदस्वरूप परमात्मा परमपद है, इसी की प्राप्ति होने से जीव सब दुःखों से छूटता है, अन्यथा जीव को कभी परमसुख नहीं मिलता। इससे सब प्रकार परमेश्वर की प्राप्ति में यथावत् प्रयत्न करना चाहिये ॥२१॥

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥२२॥
ऋ. १ । ३ । १८ । २ ॥

व्याख्यान - (परमेश्वरो हि सर्वजीवेभ्य आशीर्ददाति) ईश्वर सब जीवों को आशीर्वाद देता है कि, हे जीवो ! "वः" (युष्माकम्) तुम्हारे लिये आयुध अर्थात् शतघ्नी (तोप) भुशुण्डी (बंदूक) धनुष्, वाण, करवाल (तलवार) शक्ति (बरछी) आदि शस्त्र स्थिर और "वीळू" दृढ़ हों। किस प्रयोजन के लिये ? "पराणुदे" तुम्हारे शत्रुओं के पराजय के लिये जिससे तुम्हारे कोई दुष्ट शत्रु लोग कभी दुःख न दे सकें "उत, प्रतिष्कभे" शत्रुओं के वेग को थांभने के लिये "युष्माकमस्तु, तविषी पनीयसी" तुम्हारी बलरुप उत्तम सेना सब संसार में प्रशंसित हो जिससे तुमसे लड़ने को शत्रु का कोई संकल्प भी न हो परन्तु "मा मर्त्यस्य मायिनः" जो अन्यायकारी मनुष्य है उसको हम आशीर्वाद नहीं देते। दुष्ट, पापी, ईश्वरभक्ति रहित मनुष्य का बल और राज्यैश्वर्यादि कभी मत बढ़ो, उसका पराजय ही सदा हो। हे बंधुवर्गो ! आओ, अपने सब मिलके सर्व दुःखों का विनाश और विजय के लिये ईश्वर को प्रसन्न करें जो अपने को वह ईश्वर आशीर्वाद देवे, जिससे अपने शत्रु कभी न बढ़ें ॥२२॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥२३॥ ऋ. १ । २ । ७ । १९॥

व्याख्यान - हे जीवो ! "विष्णोः" व्यापकेश्वर के किये दिव्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि कर्मो को तुम देखो। (प्रश्न) किस हेतु से हम लोग जानें कि व्यापक विष्णु के कर्म्म हैं ? (उत्तर) "यतो व्रतानि पस्पशे" जिससे हम लोग ब्रह्मचर्यादि व्रत तथा सत्य भाषणादि व्रत और ईश्वर के नियमों का अनुष्ठान करने को जीव सुशरीरधारी होके समर्थ हुए हैं, यह काम उसी के सामर्थ्य से है। क्योंकि "इन्द्रस्य, युज्यः, सखा" इन्द्रियों के साथ वर्तमान कर्मो का कर्त्ता, भोक्ता जो जीव इसका वही एक योग्य मित्र है, अन्य कोई नहीं क्योंकि ईश्वर जीव का अन्तर्यामी है, उससे परे जीव का हितकारी कोई और नहीं हो सकता, इससे परमात्मा से सदा मित्रता रखनी चाहिये ॥२३॥

पराणुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥२४॥

ऋ. ५ । ३ । २१ । २५ ॥

व्याख्यान - हे मघवन् परमैश्वर्य्यवन् इन्द्र परमात्मन् ! "अमित्रान्" हमारे सब शत्रुओं को "पराणुदस्व" परास्त कर दे । हे दातः ! "सुवेदा, नो, वसू, कृधि"। "अस्माकं, बोध्यविता" हमारे लिये सब पृथिवी के धन सुलभ कर। "महाधने" युद्ध में हमारे और हमारे मित्र तथा सेनादि के "अविता" रक्षक "वृधः" वर्द्धक "भव" आप ही हो तथा "बोधि" हमको अपने ही जानो । हे भगवन् ! जब आप हमारे रक्षक योद्धा होंगे तभी हमारा सर्वत्र विजय होगा, इसमें सन्देह नहीं ।।२४।।

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ।।२५।।

ऋ. ५ । ३ । २८ । २ ।।

व्याख्यान - हे ईश्वर! "भगः" आप और आपका दिया हुआ ऐश्वर्य "शं नः" हमारे लिए सुखकारक हो, और "शमु, नः, शंसो अस्तु" आपकी कृपा से हमारी सुखकारक प्रशंसा सदैव हो । "पुरन्धिः, शमु, सन्तु, रायः" संसार के धारण करनेवाले आप तथा वायु प्राण और सब धन आनन्ददायक हों । "शन्नः, सत्यस्य (सुयमस्य शंसः)" सत्य यथार्थ धर्म, सुसंयम और जितेन्द्रियादिलक्षणयुक्त जो प्रशंसा (पुण्यस्तुति) सब संसार में प्रसिद्ध है वह परमानन्द और शांतियुक्त हमारे लिये हो । "शं नो, अर्यमा" न्यायकारी आप "पुरुजातः" अनन्तसामर्थ्ययुक्त हमारे कल्याणकारक होओ ।।२५।।

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य ।
अग्ने रथीरध्वराणाम् ।।२६।। ऋ. ५ । ८ । ३५। २ ।।

व्याख्यान - हे "अग्ने" सर्वज्ञ ! तू ही सर्वत्र "प्रशस्यः" स्तुति करने के योग्य है, अन्य कोई नहीं । "विदथेषु" यज्ञ और युद्धों में आप ही स्तोतव्य हो । जो तुम्हारी स्तुति को छोड़ के अन्य जड़ादि की स्तुति करता है उसके यज्ञ तथा युद्धों में विजय कभी सिद्ध नहीं होता है । "सहन्त्य" शत्रुओं के समूहों के आप ही घातक हो । "रथीः" अध्वरों अर्थात् यज्ञ और युद्धों में आप ही रथी हो । हमारे शत्रुओं के योद्धाओं को जीतनेवाले हो इस कारण से हमारा पराजय कभी नहीं हो सकता ।।२६।।

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।२७।।

ऋ. ५ । ३ । २७ । २५ ।।

व्याख्यान - हे भगवन् ! "तन्न इन्द्रः" सूर्य "वरुणः" चन्द्रमा, "मित्रः" वायु "अग्निः" अग्नि "आपः" जल "ओषधीः" वृक्षादि वनस्थ सब पदार्थ आपकी आज्ञा से सुखरूप होकर हमारा सेवन करें । हे रक्षक ! "मरुतामुपस्थे" प्राणादि पवनों के गोद में बैठे हुए हम आपकी कृपा से "शर्मन्त्स्याम" सुखयुक्त सदा रहें "स्वस्तिभिः" सब प्रकार के रक्षणों से "यूयं, पात" (आदरार्थ बहुवचनम्) आप हमारी रक्षा करो । किसी प्रकार से हमारी हानि न हो ॥२७॥

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा ।
इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥२८॥ ऋ. ५ । ८ । १७ । ४१ ॥

व्याख्यान - हे ईश्वर ! "ऋषिः" सर्वज्ञ "पूर्वजाः" और सबके पूर्वजों के एक अद्वितीय "ईशानः" ईशनकर्ता अर्थात् ईश्वरता करनेहारे ईश्वर तथा सबसे बड़े प्रलयोत्तरकाल में आप ही रहनेवाले "ओजसा" अनन्तपराक्रम से युक्त हो । हे इन्द्र महाराजाधिराज ! "चोष्कूयसे वसु" सब धन के दाता शीघ्र कृपा का प्रवाह अपने सेवकों पर कर रहे हो । आप अत्यन्त आर्द्र स्वभाव हो ॥२८॥

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।
गवे च भद्र धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः ।
सु ऊतयो व ऊतयः ॥२९॥ ऋ. ६ । ४ । ९ । १२ ॥

व्याख्यान - हे भगवन् ! "रक्षस्विने भद्रं, नेह" पापी हिंसक दुष्टात्मा को इस संसार में सुख मत देना । "नावयै" धर्म से विपरीत चलनेवाले को सुख कभी मत हो । तथा "नोपया उत" अधर्मी के समीप रहनेवाले उसके सहायक को भी सुख नहीं हो । ऐसी प्रार्थना आपसे हमारी है कि दुष्ट को सुख कभी न होना चाहिये नहीं तो कोई जन धर्म में रुचि नहीं करेगा किन्तु इस संसार में धर्मात्माओं को ही सुख सदा दीजिये । तथा हमारी शमदमादियुक्त इन्द्रियां, दुग्ध देनेवाली गौ आदि, वीरपुत्र और शूरवीरभृत्य "श्रवस्यते" विद्या, विज्ञान और अन्नाद्यैश्वर्ययुक्त हमारे देश के राजा और धनाढ्यजन तथा इनके लिये "अनेहसः" निष्पाप निरुपद्रव स्थिर दृढ़ सुख हो "व ऊतयो व ऊतयः" (वः युष्माकं, बहुवचनमादरार्थम्) हे सर्वरक्षकेश्वर ! आप सब रक्षण अर्थात् पूर्वोक्त सब धर्मात्माओं की रक्षा करनेहारे हैं । जिस पर आप रक्षक हो उनको सदैव भद्र कल्याण (परमसुख) प्राप्त होता है, अन्य को नहीं ॥२९॥

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः ।
स्याम ते सुमतावपि ॥३०॥ ऋ. ६ । ३ । ४० । २४ ॥

व्याख्यान - हे परमात्मन् ! आप वसु अर्थात् सबको अपने में बसानेवाले और सब में आप बसनेवाले हो तथा "वसुपतिः" पृथिव्यादि वास हेतुभूतों के पति हो । "कमसि" हे अग्ने विज्ञानानन्द स्वप्रकाशस्वरूप ! आप ही सबके सुखकारक और सुखस्वरूप हो तथा "विभावसुः" सत्यस्वप्रकाशक धनमय हो । हे भगवन् ! ऐसे जो आप, उन "ते" आपकी "सुमतौ" अत्यन्तोत्कृष्ट ज्ञान और परस्पर प्रीति में हम लोग स्थिर हों ॥३०॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥३१॥

ऋ. १ । ७ । ६ । १ ॥

व्याख्यान - हे मनुष्यो ! जो हमारा तथा सब जगत् का राजा सब भुवनों का स्वामी "कम्" सबका सुखदाता और "अभिश्रीः" सबका निधि (शोभाकारक) है । "वैश्वानरो, यतते, सूर्येण" संसारस्थ सब नरों का नेता (नायक) और सूर्य के साथ वही प्रकाशक है अर्थात् सब प्रकाशक पदार्थ उसके रचे हैं । "इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे" इसी ईश्वर के सामर्थ्य से ही यह संसार उत्पन्न हुआ है अर्थात् उसने रचा है । "वैश्वानरस्य सुमतौ, स्याम" उस वैश्वानर परमेश्वर की सुमतौ अर्थात् सुशोभन (उत्कृष्ट) ज्ञान में हम निश्चित सुखस्वरूप और विज्ञानवाले हों । हे महाराजाधिराजेश्वर ! आप इस हमारी आशा को कृपा से पूरी करो ॥३१॥

न यस्य देवा देवता न मर्त्ता आपश्च न शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥३२॥

ऋ. १ । ७ । १० । १५ ॥

व्याख्यान - हे अनन्तबल ! "न यस्य" जिस परमात्मा का और उसके बलादि सामर्थ्य का "देवाः" इन्द्रिय "देवताः" विद्वान् सूर्यादि बुद्ध्यादि "न, मर्त्ताः" साधारण मनुष्य "आपश्च न" आप, प्राण, वायु, समुद्र इत्यादि सब अन्त (पार) कभी नहीं पा सकते किन्तु "प्ररिक्वा" प्रकृष्टता से इनमें व्यापक होके अतिरिक्त (इनसे विलक्षण)

भिन्न ही परिपूर्ण हो रहा है सो "मरुत्वान्" अत्यन्त बलवान् इन्द्र परमात्मा "त्वक्षसा" शत्रुओं के बल का छेदक बल से "क्ष्मः" पृथिवी को "दिवश्च" स्वर्ग को धारण करता है सो "इन्द्र" परमात्मा "ऊती" हमारी रक्षा के लिये "भवतु" तत्पर हो ॥३२॥

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धु दुरितात्यग्निः ॥३३॥

ऋ. १ । ७ । ७ । १ ॥

व्याख्यान - हे "जातवेदः" परब्रह्मन् ! आप जातवेद हो, उत्पन्नमात्र सब जगत् को जाननेवाले हो, सर्वत्र प्राप्त हो । जो विद्वानों से ज्ञात सबमें विद्यमान (जात अर्थात् प्रादुर्भूत अनन्त धनवान् वा अनन्त ज्ञानवान् हो इससे आपका नाम जातवेद है) उन आपके लिये "वयं सोमं, सुनवाम" जितने सोम प्रिय-गुणविशिष्टादि हमारे पदार्थ हैं, वे सब अर्पित हैं, सो आप हे कृपालो ! "अरातीयतः" दुष्ट शत्रु जो हम धर्मात्माओं का विरोधी उसके "वेदः" धनैश्वर्यादि का "नि दहाति" नित्य दहन करो जिससे वह दुष्टता को छोड़ के श्रेष्ठता को स्वीकार करे तथा "नः" हमको "दुर्गाणि, विश्वा" सम्पूर्ण दुस्सह दुःखों से "पर्षदति" पार करके आप नित्य सुख को प्राप्त करो । "नावेव, सिन्धुम्" जैसे अति कठिन नदी वा समुद्र से पार होने के लिये नौका होती है "दुरितात्यग्निः" वैसे ही हमको सब पापजनित अत्यन्त पीड़ाओं से पृथक (भिन्न) करके संसार में और मुक्ति में ही परमसुख को शीघ्र प्राप्त करो ॥३३॥

स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥३४॥

ऋ. १ । ७ । १० । १२ ॥

व्याख्यान - हे दुष्टनाशक परमात्मन् ! आप "वज्रभृत्" अच्छेद्य (दुष्टों के छेदक) सामर्थ्य से सर्वशिष्ट हितकारक दुष्टविनाशक जो न्याय, उसको धारण कर रहे हो "प्राणो वा वज्रः" इत्यादि शतपथादि का प्रमाण है । अतएव "दस्युहा" दुष्ट पापी लोगों का हनन करने वाले हो । "भीमः" आपकी न्याय आज्ञा को छोड़नेवालों पर भयङ्कर भय देनेवाले हो । "सहस्रचेताः" सहस्रों विज्ञानादि गुणवाले आप ही हो । "शतनीथः" सैकड़ों असंख्यात पदार्थों की प्राप्ति करानेवाले हो ।

"ऋभ्वा" अत्यन्त विज्ञानादि प्रकाशवाले हो और सबके प्रकाशक हो तथा महान् वा महाबलवाले हो । "न, चम्रीष:" किसी की चमू (सेना) में वश को प्राप्त नहीं होते हो । "शवसा, पाञ्चजन्य:" स्वबल से आप पाञ्चजन्य (पांच प्राणों के) जनक हो । "मरुत्वान्" सब प्रकार के वायुओं के आधार तथा चालक हो । सो आप "इन्द्र:" हमारी रक्षा के लिये प्रवृत्त हों जिससे हमारा कोई काम न बिगड़े ।।३४।।

सेमं न: काममापृण गोभिरश्वै: शतक्रतो ।
स्तवाम त्वा स्वाध्य: ।।३५।। ऋ. १।१।३१।९।।

व्याख्यान - हे "शतक्रतो" अनन्तक्रियेश्वर ! आप असंख्यात विज्ञानादि यज्ञों से प्राप्त हो, तथा अनन्तक्रियायुक्त हो । सो आप "गोभिरश्वै:" गाय, उत्तम इन्द्रिय, श्रेष्ठ पशु, सर्वोत्तम अश्वविद्या (विज्ञानादियुक्त) तथा अश्व अर्थात् श्रेष्ठ घोड़ादि पशुओं और चक्रवर्ती राज्यैश्वर्य्य से "सेमं" न:, काममापृण" हमारे काम को परिपूर्ण करो । फिर हम भी "स्तवाम, त्वा, स्वाध्य:" सुबुद्धियुक्त हो के उत्तम प्रकार से आपका स्तवन (स्तुति) करें । हमको दृढ़ निश्चय है कि आपके विना दूसरा कोई किसी का काम पूर्ण नहीं कर सकता । आपको छोड़ के दूसरे का ध्यान वा याचना जो करते हैं, उनके सब काम नष्ट हो जाते हैं ।।३५।।

सोम गार्भिष्ट्वा वयं वर्द्धयामो वचोविद: ।
सुमृळीको न आविश ।।३६।। ऋ. १।६।२१।११

व्याख्यान - हे "सोम" सर्वजगदुत्पादकेश्वर ! आपको "वचोविद:" शास्त्रवित् हम लोग स्तुतिसमूह से "वर्द्धयाम:" सर्वोपरि विराजमान मानते हैं । "सुमृळीको, न: आविश" क्योंकि हमको सुन्दर सुख देनेवाले आप ही हो सो कृपा करके हमको आप आवेश करो जिससे हम लोग अविद्यान्धकार से छूट और विद्यासूर्य को प्राप्त होके आनन्दित हों ।।३६।।

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।
मर्य इव स्व ओक्ये ।।३७।। ऋ. १।६।२१।१३।।

व्याख्यान - हे "सोम" सोम्य सौख्यप्रदेश्वर ! आप कृपा करके "रारन्धि, न: हृदि" हमारे हृदय में यथावत् रमण करो । जैसे सूर्य्य की किरण विद्वानों का मन और

गाय, पशु अपने अपने विषय और घासादि में रमण करते हैं वा जैसे "मर्यः, इव, स्व, ओक्ये" मनुष्य अपने घर में रमण करता है, वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिये, जिससे हमको यथार्थ सर्वज्ञान और आनन्द हो ॥३७॥

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्द्धनः ।
सुमित्रः सोम नो भव ॥३८॥ ऋ. १।६।२१।१२॥

व्याख्यान - हे परमात्मभक्त जीवो ! अपना इष्ट जो परमेश्वर, सो "गयस्फानः" प्रजा, धन, जनपद और सुराज्य का बढ़ानेवाला है, तथा "अमीवहा" शरीर, इन्द्रियजन्य और मानस रोगों का हनन (विनाश) करनेवाला है । "वसुवित्" सब पृथिव्यादि वसुओं का जाननेवाला है अर्थात् सर्वज्ञ और विद्यादि धन का दाता है, "पुष्टिवर्धनः" हमारे शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा की पुष्टि का बढ़ानेवाला है । "सुमित्रः, सोम, नः, भव" सुन्दर यथावत् सबका परममित्र वही है, सो अपने उससे यह मांगें कि हे सोम सर्वजगदुत्पादक ! आप ही कृपा करके हमारे सुमित्र हों और हम भी सब जीवों के मित्र हों तथा अत्यन्त मित्रता आपसे भी रक्खें ॥३८॥

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥३९॥ ऋ. १।७।५।६॥

व्याख्यान - हे अग्ने परमात्मन् ! "त्वं, हि" तू ही "विश्वतः परिभूरसि" सब जगत् सब ठिकानों में व्याप्त है, अत एव आप विश्वतोमुख हो । हे सर्वतोमुख अग्ने ! आप स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आपका मुख है । हे कृपालो ! "अप, नः, शोशुचदघम्" आपकी इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट हो जाय जिससे हम लोग निष्पाप होके आपकी भक्ति और आज्ञा पालन में नित्य तत्पर रहें ॥३९॥

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥४०॥

ऋ. १।७।३।३॥

व्याख्यान - हे मनुष्यो ! "तमीळत" उस अग्नि की स्तुति करो, कि जो "प्रथमम्" सब कार्यों से पहिले वर्त्तमान और सबका आदि कारण है, तथा "यज्ञसाधम्"

सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ का साधक (सिद्ध करनेवाला) सबका जनक है। हे "विशः" मनुष्यो ! उसी को स्वामी मानकर "आरीः" प्राप्त होओ, जिसको अपने दीनता से पुकारते, विज्ञानादि से विद्वान् लोग सिद्ध करते और जानते हैं। "ऊर्जः, पुत्रं भरतम्" पृथिव्यादि जगत्‌रूप अन्न का पुत्र अर्थात् पालन करनेवाला तथा 'भरत' अर्थात् उसी अन्न का पोषण और धारण करनेवाला है। "सृप्रदानुम्" सब जगत् को चलने की शक्ति देनेवाला और ज्ञान का दाता है। उसी को "देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्" देव (विद्वान् लोग) अग्नि कहते और धारण करते हैं। वही सब जगत् को द्रविण अर्थात् निर्वाह के सब अन्न-जलादि पदार्थ और विद्यादि पदार्थों का देनेवाला है। उस अग्नि परमात्मा को छोड़ के अन्य किसी की भक्ति वा याचना कभी किसी को न करनी चाहिये ॥४०॥

तमूतयो रणञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥४१॥

ऋ. १।७।१।७॥

व्याख्यान - हे मनुष्यो ! "तमूतयः" उसी इन्द्र परमात्मा की प्रार्थना तथा शरणागति से अपने को "ऊतयः" अनन्त रक्षण तथा बलादि गुण प्राप्त होंगे। "शूरसातौ" युद्ध में अपने को यथावत् "रणयन्" रमण और रणभूमि में शूरवीरों के गुण परस्पर प्रीत्यादि प्राप्त करावेगा "तं क्षेमस्य, क्षितयः" हे शूरवीर मनुष्यो ! उसी को क्षेम कुशलता का "त्राम्" रक्षक "कृण्वत" करो जिससे अपना पराजय कभी न हो। क्योंकि, "सः, विश्वस्य" सो करुणामय, सब जगत् पर करुणा करनेवाला "एकः" एक ही है अन्य कोई नहीं, सो परमात्मा "मरुत्वान्" प्राण, वायु, बल, सेनायुक्त "ऊती" (ऊतये) सम्यक् हम लोगों पर कृपा से रक्षक हो, जिसकी रक्षा से हम लोग कभी पराजय को न प्राप्त हों ॥४१॥

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥४२॥

ऋ. १।७।३।२॥

व्याख्यान - हे मनुष्यो ! सो ही "पूर्वया, निविदा" आदि सनातन, सत्यता आदि गुणयुक्त परमात्मा था, अन्य कोई (कार्य) नहीं था। तब सृष्टि के

आदि में स्वप्रकाशस्वरूप एक ईश्वर ने प्रजा की उत्पत्ति की। ईक्षणता (विचार) (और) सर्वज्ञतादिसामर्थ्य से सत्य विद्यायुक्त वेदों की तथा "मनूनाम्" मननशील मनुष्यों की तथा पशु-वृक्षादि "प्रजाः" प्रजा को "अजनयत् उत्पन्न किया-परस्पर मनुष्य और पशु व्यवहार को चलने के लिये। परन्तु मननशील मनुष्यों को अवश्य स्तुति करने योग्य वही है। "विवस्वता चक्षसा" सूर्यादि तेजस्वी सब पदार्थों का प्रकाशनेवाले बल से स्वर्ग (सुखविशेष) सब लोक "अपः" अन्तरिक्ष में पृथिव्यादि मध्यम लोक और निकृष्ट दुःखविशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक-लोकान्तर रचे हैं। जो ऐसा सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर है उसी "द्रविणोदाम्" विज्ञानादि धन देनेवाले को "देवाः" (विद्वान् लोग) अग्नि जानते हैं। हम लोग उसी को भजें ॥४२॥

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥४३॥

ऋ. १।७।१४।४॥

व्याख्यान - हे इन्द्र परमात्मन्! "त्वया युजा वयं, जयेम" आपके साथ वर्तमान आपकी सहायता से हम लोग दुष्ट शत्रुजन को जीतें। कैसा वह शत्रु? कि "आवृतम्" हमारे बल से घेरा हुआ। हे महाराजाधिराजेश्वर! "भरे भरे अस्माकमंशमुदवा" युद्ध युद्ध में हमारे अंश (बल) सेना का "उदव" उत्तम रीति से कृपा करके रक्षण करो, जिससे किसी युद्ध में क्षीण होके हम पराजय को न प्राप्त हों। जिनको आपकी सहायता है उनका सर्वत्र विजय होता ही है। हे "इन्द्रमघवन्" महाधनेश्वर! "शत्रूणां, वृष्ण्या" हमारे शत्रुओं के वीर्य पराक्रमादि को "प्ररुज" प्रभग्न रुग्ण करके नष्ट कर दे। "अस्मभ्यं, वरिवः, सुगं, कृधि" हमारे लिये चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धनको "सुगम्" सुख से प्राप्त कर अर्थात् आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को प्राप्त हो ॥४३॥

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥४४॥

ऋ. १।७।१२।५॥

व्याख्यान - हे मनुष्यो! जो सब जगत् (स्थावर) जड़ अप्राणी का और

"प्राणतः" चेतनावाले जगत् का "पतिः" अधिष्ठाता और पालक है, तथा जो सब जगत् के प्रथम सदा से है और "ब्रह्मणे, गाः, अविन्दत्" जिसने यही नियम किया है कि ब्रह्म अर्थात् विद्वान् के ही लिये पृथिवी का लाभ और उसका राज्य है । और जो "इन्द्रः" परमैश्वर्यवान् परमात्मा डाकुओं को "अधरान्" नीचे गिराता है तथा उनको मार ही डालता है, "मरुत्वन्तं सख्याय, हवामहे" आओ मित्रो भाई लोगो ! अपने सब संप्रीति से मिलके मरुत्वान् अर्थात् परमानन्द बलवाले इन्द्र परमात्मा को सखा होने के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गद्‌गद् हो के बुलावें । वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परम मित्रता) करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।४४।।

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ।।४५।।

ऋ. १।८।५।२।।

व्याख्यान - हे दुष्टों को रुलानेहारे रुद्रेश्वर! हमको "मृड" सुखी कर, तथा "मयस्कृधि" हमको मय अर्थात् अत्यन्त सुख का सम्पादन कर। "क्षयद्वीराय, नमसा, विधेम, ते" शत्रुओं के वीरों का क्षय करनेवाले अत्यन्त नमस्कारादि से आपकी परिचर्या करनेवाले हम लोगों का रक्षण यथावत् कर। "यच्छम्" हे रुद्र ! आप हमारे पिता (जनक) और पालक हो, हमारी सब प्रजा को सुखी कर, "योश्च" प्रजा के रोगों का भी नाश कर। जैसे "मनुः" मान्यकारक पिता "आयेजे" स्वप्रजा को संगत और अनेकविध लाडन करता है वैसे आप हमारा पालन करो। हे रुद्र भगवन्! "तव, प्रणीतिषु" आपकी आज्ञा का 'प्रणय' अर्थात् उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होके "तदश्याम" वीरों के चक्रवर्त्ती राज्य को आपके अनुग्रह से प्राप्त हों ।।४५।।

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ।।४६।।

ऋ. १।५।१९।३।।

व्याख्यान - हे प्रियबन्धु विद्वानो ! "देवो, न" ईश्वर सब जगत् के बाहर और भीतर सूर्य के समान प्रकाश कर रहा है, "यः पृथिवीम्" जो पृथिव्यादि जगत् को रचके धारण कर रहा है और "विश्वधायाः, उपक्षेति" विश्वधारक शक्ति का भी निवास देने और धारण करनेवाला है, तथा जो सब जगत् का परम मित्र अर्थात् जैसे

"प्रिय-मित्रो, न, राजा" प्रियमित्रवान् राजा अपनी प्रजा का यथावत् पालन करता है, वैसे ही हम लोगों का पालनकर्ता वही एक है, और कोई भी नहीं। "पुरः सदः, शर्मसदः, न, वीराः" जो जन ईश्वर के पुरःसद हैं, (ईश्वराभिमुख ही हैं) वे ही 'शर्मसदः' अर्थात् सुख में सदा स्थिर रहते हैं। वा जैसे "न वीराः" पुत्रलोग अपने पिता के घर में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं, वैसे ही जो परमात्मा के भक्त हैं वे सदा सुखी रहते हैं, परन्तु जो अनन्यचित्त होके निराकार सर्वत्र व्याप्त ईश्वर की सत्य श्रद्धा से भक्ति करते हैं। जैसे कि "अनवद्या, पतिजुष्टेव, नारी" अत्यन्तोत्तमगुणयुक्त पति की सेवा में तत्पर पतिव्रता नारी (स्त्री) रात-दिन, तन, मन, धन और अति प्रेम से अनुकुल ही रहती है, वैसे प्रेम प्रीतियुक्त होके आओ भाई लोगो ! ईश्वर की भक्ति करें और अपने सब मिलके परमात्मा से परमसुख लाभ उठावें ॥४६॥

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥४७॥

ऋ. ७।८।१२।२॥

व्याख्यान - हे सर्वाभिरक्षकेश्वर ! "सा मा सत्योक्तिः" आपकी सत्य आज्ञा जिसका हमने अनुष्ठान किया वह "विश्वतः, परि पातु नः" हमको सब संसार से सर्वथा पालन और सब दुष्ट कामों से सदा पृथक् रक्खे कि कभी हमको अधर्म करने की इच्छा भी न हो "द्यावा, च" और दिव्य सुख से सदा युक्त करके यथावत् हमारी रक्षा करे। "यत्र" जिस दिव्य सृष्टि में "अहानि" सूर्यादिकों को दिवस आदि के होने के निमित्त "ततनन्" आपने ही विस्तारे हैं, वहां भी हमारा सब उपद्रवों से रक्षण करो। "विश्वमन्य" आपसे अन्य (भिन्न) विश्व अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके सामर्थ्य से (प्रलय में) "नि विशते" प्रवेश करता है (कार्य सब कारणात्मक होता है), उस समय में भी आप हमारी रक्षा करो। "यदेजति" जिस समय यह जगत् आपके सामर्थ्य से चलित हो के उत्पन्न होता है, उस समय भी सब पीड़ाओं से आप हमारी रक्षा करें। "विश्वाहापो, विश्वाहा" जो जो विश्व का हन्ता (दुःख देनेवाला) उसको आप नष्ट कर देओ, क्योंकि आपके सामर्थ्य से सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है, आपके सामने कोई राक्षस (दुष्टजन) क्या कर सकता है ? क्योंकि आप सब जगत् में उदित (प्रकाशमान) हो रहे हो। परन्तु सूर्य्यवत् हमारे हृदय में कृपा करके प्रकाशित होओ, जिससे हमारी अविद्यान्धकारता सब नष्ट हो ॥४७॥

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥४८॥

ऋ. १।६।३२।१३॥

व्याख्यान - हे मनुष्यो ! वह परमात्मा कैसा है ? कि हम लोग उसकी स्तुति करें। हे अग्ने परमेश्वर ! आप "देवः, देवनामसि" देवों (परमविद्वानों) के भी देव (परमविद्वान्) हो, तथा उनको परमानन्द देनेवाले हो, तथा "अद्भुतः" अत्यन्त आश्चर्यरूप मित्र सर्वसुखकारक सबके सखा हो, "वसुं" पृथिव्यादि वसुओं के भी वास करानेवाले हो, तथा "अध्वरे" ज्ञानादि यज्ञ में "चारुः" अत्यन्त शोभायमान और शोभा के देनेवाले हो। हे परमात्मन् ! "सप्रथमस्तमे सख्ये, शर्मणि तव" आपके अतिविस्तीर्ण, आनन्दस्वरूप सखाओं के कर्म में हम लोग स्थिर हों, जिससे हमको कभी दुःख न प्राप्त हो और आपके अनुग्रह से हम लोग परस्पर अप्रीतियुक्त कभी न हों ॥४८॥

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥४९॥

ऋ. १।७।१९।८॥

व्याख्यान - हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्तेश्वर ! "मा नो, वधीः" हमारा वध मत कर अर्थात् अपने से अलग हमको मत गिरावो। "मा परा दाः" हमसे अलग आप कभी मत हो "मा नः प्रिया" हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावो, "आण्डा मा" हमारे गर्भो का विदारण मत कर। "मा नः, पात्रा" हमारे भोजनाद्यर्थ सुवर्णादि पात्रों को हमसे अलग मत कर। "सहजानुषाणि" जो जो हमारे सहज अनुषक्त, स्वभाव से अनुकूल मित्र हैं, उनको आप नष्ट मत करो अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत रक्षा करो ॥४९॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥५०॥

ऋ. १।८।६।७॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥५१॥

ऋ. १।८।६।८॥

व्याख्यान - हे "रुद्र" दुष्ट विनाशकेश्वर ! आप हम पर कृपा करो "मा, नो, व." हमारे ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध पिता इनको आप नष्ट मत करो । तथा "मा नो अर्भकम्" छोटे बालक और "उक्षन्तम्" वीर्यसेचन समर्थ जवान तथा जो गर्भ में वीर्य को सेचन किया है उसको मत विनष्ट करो तथा हमारे पिता, माता और प्रिय तनुओं (शरीरों) का "मा, रीरिषः" हिंसन मत करो ।

"मा, नः तोके" कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठपुत्र, "आयौ" उमर "गोषु" गाय आदि पशु "अश्वेषु" घोड़ा आदि उत्तम यान हमारी सेना के शूरों में "हविष्मन्तः" यज्ञ के करनेवाले इनमें "भामितः" क्रोधित और "मा रीरिषः" रोषयुक्त होके कभी प्रवृत्त मत हो । हम लोग आपको "सदमित्वा, हवामहे" सर्वदेव आह्वान करते हैं । हे भगवन् रुद्र परमात्मन् ! आपसे यही प्रार्थना है कि हमारी और हमारे पुत्र, धनैश्वर्यादि की रक्षा करो ।।५०।।५१।।

उद्‌गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ।।५२।। ऋ. २।८।१२।२।।

आवदँस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ।।५३।।
ऋ. २।८।१२।३।।

व्याख्यान - हे "शकुने" सर्वशक्तिमन्नीश्वर ! आप सामगान को गाते ही हो । वैसे ही हमारे हृदय में सब विद्या का प्रकाशित गान करो । जैसे यज्ञ में महापंडित सामगान करता है वैसे आप भी हम लोगों के बीच में सामादि विद्या का प्रकाश कीजिये । "ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु" आप कृपा से सवन (पदार्थ विद्याओं) की "शंससि" प्रशंसा करते हो वैसे हमको भी यथावत् प्रशंसित करो । जैसे "ब्रह्मपुत्र इव" वेदों का वेत्ता विज्ञान से सब पदार्थों की प्रशंसा करता है वैसे आप भी हम पर कृपा कीजिये । आप "वृषेव वाजी" सर्वशक्ति का सेवन करने और अन्नादि पदार्थों के देनेवाले तथा महा बलवान् और वेगवान् होने से वाजी हो । जैसे कि वृषभ के समान आप उत्तम गुण और उत्तम पदार्थों की वृष्टि करनेवाले हो वैसे हम पर उनकी

वृष्टि करो । "शिशुमतीः" हम लोग आपकी कृपा से उत्तम शिशु (सन्तानादि) को "अपीत्य" प्राप्त होके आपको ही भजें । "आसर्वतो नः शकुने" हे शकुने ! सर्वसामर्थ्यवान् ईश्वर ! सब ठिकानों से हमारे लिये "भद्रम्" कल्याण को "आ वद" अच्छे प्रकार कहो अर्थात् कल्याण की ही आज्ञा और कथन करो, जिससे अकल्याण की बात भी कभी हम न सुनें । "विश्वतो, नः श." हे सबको सुख देनेवाले ईश्वर ! सब जगत् के लिये "पुण्यम्" धर्मात्मा के कर्म करने को "आ वद" उपदेश कर, जिससे कोई मनुष्य अधर्म करने की इच्छा भी न करे और सब ठिकाने में सत्यधर्म की प्रवृत्ति हो ।

"आवदँस्त्वं श." हे शकुने जगदीश्वर ! आप सब "भद्रम्" कल्याण का भी कल्याण अर्थात् व्यावहारिक सुख के भी उपर मोक्षसुख का निरन्तर उपदेश कीजिये । "तूष्णीमासीनः सु." हे अन्तर्यामिन् ! हमारे हृदय में सदा स्थिर हो मौन से ही "सुमतिम्" सर्वोत्तम ज्ञान देओ । "चिकिद्धि नः" कृपा से हमको अपने रहने के लिये घर ही बनाओ और आपकी परमविद्या को हम प्राप्त हों । "यदुत्पतन्वद" उत्तम व्यवहार में पहुँचाते हुए आपका (यथा) जिस प्रकार से "कर्करिर्वदसि" कर्त्तव्य कर्म, धर्म को ही अत्यन्त पुरुषार्थ से करो, अकर्त्तव्य दुष्ट कर्म मत करो ऐसा उपदेश है कि "पुरुषार्थ" अर्थात् यथायोग्य उद्यम को कभी कोई मत छोड़ो । जैसे "बृहद्वदेम विदथे" विज्ञानादि यज्ञ वा धर्मयुक्त युद्धों में "सुवीर" अत्यन्त शूरवीर होके बृहत् (सब से बड़े) आप जो परब्रह्म उन "वदेम" आपकी स्तुति, आपका उपदेश, आपकी प्रार्थना और उपासना तथा आपका यह बड़ा अखण्ड साम्राज्य और सब मनुष्यों का हित सर्वदा कहें, सुनें और आपके अनुग्रह से परमानन्द को भोगें ॥५२॥५३॥

ओ३म् महाराजाधिराजाय परमात्मने नमो नमः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां महाविदुषां

श्रीयुत विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण

दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचित आर्याभिविनये

प्रथमः प्रकाशः पूर्त्तिमागमत् ।

समाप्तोऽयं प्रथमः प्रकाशः ॥

ओ३म्

तत्सत्परमात्मने नमः

अथ द्वितीयः प्रकाशः

ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु ।
सह वीर्य्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥१॥

तैत्तिरीयारण्यके ब्रह्मानन्दवल्ली प्रपा. १० । प्रथमानुवाकः ॥१॥

व्याख्यान - हे सहनशीलेश्वर ! आप और हम लोग परस्पर प्रसन्नता से रक्षक हों । आपकी कृपा से हम लोग सदैव आपकी ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें तथा आपको ही पिता, माता, बन्धु, राजा, स्वामी, सहायक, सुखद, सुहृद् परमगुर्वादि जानें, क्षण मात्र भी आपको भूल के न रहें । आपके तुल्य वा अधिक किसी को कभी न जानें । आपके अनुग्रह से हम सब लोग परस्पर प्रीतिमान्, रक्षक, सहायक, परम पुरुषार्थी हों । एक दूसरे का दुःख न देख सकें, स्वदेशस्थादि मनुष्यों को अत्यन्त परस्पर निर्वैर प्रीतिमान्, पाखण्ड रहित करें "सह, नौ, भुनक्तु" तथा आप और हम लोग परस्पर परमानन्द का भोग करें हम लोग परस्पर हित से आनन्द भोगें कि आप हमको अपने अनन्त परमानन्द का भागी करें उस आनन्द से हम लोगों को क्षण भी अलग न रक्खें "सह, वीर्य्यं, करवावहै" आपकी सहायता से परमवीर्य जो सत्यविद्या, उसको परस्पर परमपुरुषार्थ से प्राप्त हों । "तेजस्विनावधीतमस्तु" हे अनन्त विद्यामय भगवन् ! आपकी कृपादृष्टि से हम लोगों का पठनपाठन परम विद्यायुक्त हो तथा संसार में सबसे अधिक प्रकाशित हों और अन्योन्य प्रीति से परमवीर्य पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें, हममें सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों और आप हम लोगों पर अत्यन्त कृपा करें जिससे कि हम लोग नाना पाखण्ड, असत्य, वेदविरुद्ध मतों को शीघ्र छोड़ के एक

सत्यसनातनमतस्थ हों जिससे समस्त वैरभाव के मूल जो पाखण्डमत, वे सब सद्यः प्रलय को प्राप्त हों । "मा, विद्विषावहै" और हे जगदीश्वर ! आपके सामर्थ्य से हम लोगों में परस्पर विद्वेष 'विरोध' अर्थात् अप्रीति न रहे जिससे हम लोग कभी परस्पर विद्वेष विरोध न करें किन्तु सब तन, मन, धन, विद्या इनको परस्पर सबके सुखोपकार में परमप्रीति से लगावें "ओ३म् शांतिः शांतिः शांतिः" हे भगवन ! तीन प्रकार के सन्ताप जगत् में हैं - एक आध्यात्मिक (शारीरिक) जो ज्वरादि पीड़ा होने से होता है; दूसरा आधिभौतिक जो शत्रु, सर्प, व्याघ्र, चौरादिकों से होता है और तीसरा आधिदैविक जो मन, इन्द्रिय, अग्नि, वायु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अतिशीत, अत्युष्णतेत्यादि से होता है । हे कृपासागर ! आप इन तीनों पापों की शीघ्र निवृत्ति करें जिससे हम लोग अत्यानन्द में और आपकी अखण्ड उपासना में सदा रहें ।

हे विश्वगुरो ! मुझको असत् (मिथ्या) और अनित्य पदार्थ तथा असत् काम से छुड़ा के सत्य तथा नित्य पदार्थ और श्रेष्ठ व्यवहार में स्थिर कर । हे जगन्मङ्गलमय! (सर्वदुःखेभ्यो मोचयित्वा सर्वसुखानि प्रापय) सब दुःखों से मुझको छुड़ा के, सब सुखों को प्राप्त कर । (हे प्रजापते ! सुप्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, परमैश्वर्येण, संयोजय) हे प्रजापते ! मुझको अच्छी प्रजा पुत्रादि, हस्त्यश्व गवादि उत्तम पशु सर्वोत्कृष्ट विद्या और चक्रवर्ती राज्यादि परमैश्वर्य जो स्थिर परमसुखकारक उसको शीघ्र प्राप्त कर । हे परमवैद्य ! (सर्वरोगात्पृथक्कृत्य नैरोग्यन्देहि) सर्वथा मुझको सब रोगों से छुड़ाके परम नैरोग्य दे । (हे सर्वान्तर्यामिन् सदुपदेशक शुद्धिप्रद !) (मनसा, वाचा, कर्मणा अज्ञानेन प्रमादेन वा यद्यत्पापं कृतं मया, ततत्सर्वं कृपया क्षमस्व ज्ञानपूर्वकपापकरणान्निवर्तयतु माम्) मन से, वाणी से और कर्म से, अज्ञान वा प्रमाद से जो जो पाप किया हो, किंवा करने का हो उस उस मेरे पाप को क्षमा कर ज्ञानपूर्वक पाप करने से मुझको रोक दे जिससे मैं शुद्ध होके आपकी सेवा में स्थिर होऊं। (हे न्यायाधीश ! कुकामकुलोभकुमोहभयशोकालस्येर्ष्याद्वेषप्रमादविषय-तृष्णानैष्ठुर्याभिमानदुष्टभावाविद्याभ्यो निवारय, एतेभ्यो विरुद्धेषूत्तमेषु गुणेषु संस्थापय माम्) हे ईश्वर ! कुकाम, कुलोभादि पूर्वोक्त दुष्ट दोषों को स्वकृपा से छुड़ा के श्रेष्ठ कामों में यथावत् मुझको स्थिर कर । मैं अत्यन्त दीन होके यही मांगता हूँ कि मैं आप और आपकी आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूं । हे प्राणपते,

प्राणप्रिय, प्राणपतिः, प्राणाधार, प्राणजीवन सुराज्यप्रद ! मेरे प्राणवाले आदि आप ही हो, मेरा सहायक आपके बिना कोई नहीं है । हे महाराजाधिराज ! जैसा सत्य न्याययुक्त अखण्डित आपका राज्य है, वैसा न्यायराज्य हम लोगों का भी आपकी ओर से स्थिर हो । आपके राज्य के अधिकारी किङ्कर अपने कृपाकटाक्ष से हमको शीघ्र ही कर । हे न्यायप्रिय ! हमको भी न्यायप्रिय यथावत् कर । हे धर्माधीश ! हमको धर्म में स्थिर रख । हे करुणामय पितः ! जैसे माता और पिता अपने सन्तानों का पालन करते हैं वैसे ही आप हमारा पालन करो ।।१।।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।२।।

यजुर्वेदे । अध्याये ४० । मन्त्र ८ ।।

व्याख्यान - "स, पर्यगात्" वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है "शुत्रम्" सब जगत् का करनेवाला वही है । "अकायम्" और वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता, क्योंकि वह अखण्ड और अनन्त, निर्विकार है इससे देहधारण कभी नहीं करता । उससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता "अव्रणम्" वह अखण्डैकरस, अच्छेद्य, अभेद्य, निष्कम्प और अचल है इससे अशांशिभाव भी उसमें नहीं है क्योंकि उसमें छिद्र किसी प्रकार से नहीं हो सकता "अस्नाविरम्" नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध (निरोध) भी उसका नहीं हो सकता, अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर का कोई आवरण नहीं हो सकता "शुद्धम्" वह परमात्मा सदैव निर्मल, अविद्यादि जन्म, मरण, हर्ष, शोक, क्षुधा, तृषादि दोषोपाधियों से रहित है, शुद्ध की उपासना करनेवाला शुद्ध ही होता है और मलिन का उपासक मलिन ही होता है "अपापविद्धम्" परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता, क्योंकि वह सदैव न्यायकारी ही है "कविः" त्रैकालज्ञ, (सर्ववित्) महाविद्वान् जिसकी विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले सकता "मनीषी" सब जीवों के मन (विज्ञान) का साक्षी सबके मन का दमन करनेवाला है "परिभूः" सब दिशा और सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, सबके ऊपर विराजमान है "स्वयम्भूः" जिसका आदिकारण माता पिता, उत्पादक कोई नहीं किन्तु वही सबका आदिकारण है

"याथातथ्यतोर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः" उस ईश्वर ने अपनी प्रजा को यथावत् सत्य, सत्यविद्या जो चार वेद उनका सब मनुष्यों के परमहितार्थ उपदेश किया है, उस हमारे दयामय पिता परमेश्वर ने बड़ी कृपा से अविद्यान्धकार का नाशक, वेदविद्यारूप सूर्य्य प्रकाशित किया है और सबका आदिकारण परमात्मा है ऐसा अवश्य मानना चाहिये, ऐसे विद्यापुस्तक का भी आदिकारण ईश्वर को ही निश्चित मानना चाहिये, विद्या का उपदेश ईश्वर ने अपनी कृपा से किया है क्योंकि हम लोगों के लिये उसने सब पदार्थों का दान किया है तो विद्यादान क्यों न करेगा ? सर्वोत्कृष्टविद्या पदार्थ का दान परमात्मा ने अवश्य किया है तो वेद के विना अन्य कोई पुस्तक संसार में ईश्वरोक्त नहीं है। जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है वैसा ही वेदपुस्तक भी है, अन्य कोई पुस्तक ईश्वरकृत, वेदतुल्य वा अधिक नहीं है। अधिक विचार इस विषय का "सत्यार्थप्रकाश" और "ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका" मेरे किये ग्रन्थों में देख लेना ॥२॥

दृते दृँह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥३॥ यजु. ३६।१८॥

व्याख्यान - हे अनन्तबल महावीर ईश्वर ! "दृते" हे दुष्टस्वभावनाशक विदीर्णकर्म अर्थात् विज्ञानादि शुभ गुणों का नाशकर्म करनेवाला मुझको मत रक्खो (मत करो) किन्तु उससे मेरे आत्मादि को पृथक् रख के विद्या, सत्य, धर्मादि शुभगुणों में सदैव अपनी कृपा बराबर सामर्थ्य से स्थित करो। "दृँह मा" हे परमैश्वर्य्यवन् भगवन् ! धर्म्मार्थकाममोक्षादि तथा विद्या-विज्ञानादि दान से अत्यन्त मुझको बढ़ा। "अमित्रस्येत्यादि" हे सर्वसुहृदीश्वर सर्वान्तर्य्यामिन् ! सब भूत प्राणीमात्र मित्र की दृष्टि से यथावत् मुझको देखें, सब मेरे मित्र हो जायं, कोई मुझसे किञ्चिन्मात्र भी वैर दृष्टि न करे। "मित्रस्याहं चेत्यादि" हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से मैं भी निर्वैर होके सब भूत प्राणी और अप्राणी चराचर जगत् को मित्र की दृष्टि से स्वात्म स्वप्राणवत् प्रिय जानूं। अर्थात् "मित्रस्य, चक्षुषेत्यादि" पक्षपात छोड़ के सब जीव देहधारी मात्र अत्यन्त प्रेम से परस्पर वर्त्ताव करें, अन्याय से युक्त होके किसी पर भी न वर्तें, यह परमधर्म का सब मनुष्यों के लिये परमात्मा ने उपदेश किया है, सबको यही मान्य होने योग्य है ॥३॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः ॥४॥ यजु. ३२।१॥

व्याख्यान - जो सब जगत् का कारण एक परमेश्वर है, उसी का नाम अग्नि है ("ब्रह्म ह्यग्निः" शतपथे) सर्वोत्तम ज्ञानस्वरूप जानने के योग्य, प्रापणीयस्वरूप और पूज्यतमेत्यादि अग्नि शब्द का अर्थ है "आदित्यो वै ब्रह्म, वायुर्वै ब्रह्म, चन्द्रमा वै ब्रह्म, शुक्रं हि ब्रह्म, सर्वजगत्कर्तृ ब्रह्म, ब्रह्म वै बृहत्, आपो वै ब्रह्मेत्यादि" शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण हैं । "तदादित्यः" जिसका कभी नाश न हो, और स्वप्रकाशस्वरूप हो इससे परमात्मा का नाम आदित्य है । "तद्वायुः" सब जगत् का धारण करनेवाला, अनन्त बलवान्, प्राणों से भी जो प्रियस्वरूप है इससे ईश्वर का नाम वायु है पूर्वोक्त प्रमाण से । "तदु चन्द्रमाः" जो आनन्दस्वरूप और स्वसेवकों को परमान्द देनेवाला है इससे पूर्वोक्त प्रकार से चन्द्रमा परमात्मा को जानना "तदेव शुक्रम्" वही चेतनस्वरूप ब्रह्म सब जगत् का कर्त्ता है, "तद्ब्रह्म" सो अनन्त चेतन सबसे बड़ा है और धर्मात्मा स्वभक्तों को अत्यन्त सुख विद्यादि सद्गुणों से बढ़ानेवाला है, "ता आपः" उसी को सर्वज्ञ चेतन सर्वत्र व्याप्त होने से 'आप' नामक जानना, "सः, प्रजापतिः" सो ही सब जगत् का पति (स्वामी) और पालन करनेवाला है, अन्य कोई नहीं । उसी को हम लोग इष्टदेव तथा पालक मानें, अन्य को नहीं ॥४॥

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये । वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥५॥ यजु. ३६।१॥

व्याख्यान - हे करुणाकर परमात्मन् ! आपकी कृपा से मैं ऋग्वेदादिज्ञानयुक्त (श्रवणयुक्त) होके उसका वक्ता होऊं, तथा यजुर्वेदाभिप्रायार्थ सहित सत्यार्थमननयुक्त मन को प्राप्त होऊं, ऐसे ही सामवेदार्थनिश्चय निदिध्यासन सहित प्राण को सदैव प्राप्त होऊं। "वागोजः" वाग्बल, वक्तृत्वबल, मुझको आप देवें, अन्तर्यामी की कृपा से मैं यथावत् प्राप्त होऊं । "सहौजः" शरीर बल नैरोग्यदृढ़त्वादि गुणयुक्त को मैं आपके अनुग्रह से सदैव प्राप्त होऊं"मयि, प्राणापानौ" हे सर्वजनजीवनाधार ! प्राण (जिससे कि ऊर्ध्व चेष्टा होती है) और अपान (अर्थात् जिससे नीचे की चेष्टा होती है) ये दोनों मेरे शरीर में सब इन्द्रिय, सब धातुओं की शुद्धि करने तथा नैरोग्य बल,

पुष्टि, सरलगति कराने और मर्मस्थलों की रक्षा करनेवाले हों, उनके अनुकूल प्राणादि को प्राप्त होके आपकी कृपा से हे ईश्वर ! सदैव सुखयुक्त आपकी आज्ञा और उपासना में तत्पर रहूँ ॥५॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥६॥

यजु. ३२।१०॥

व्याख्यान - वह परमेश्वर हमारा "बन्धुः" दुःखनाशक और सहायक है, तथा "जनिता" सब जगत् तथा हम लोगों का भी पालन करनेवाला पिता तथा हम लोगों के कामों की सिद्धि का विधाता (पूर्ण काम की सिद्धि करनेवाला) वही है, सब जगत् का भी विधाता (रचने और धारण करनेवाला) एक परमात्मा ही है अन्य कोई नहीं । "धामानि वेदेत्यादि" "विश्वा" सब 'धाम' अर्थात् अनेक लोक-लोकान्तरों को रच के अनन्त सर्वज्ञता से यथार्थ जानता है । वह कौन परमेश्वर है ? कि जिससे 'देव' अर्थात् विद्वान् लोग ("विद्वांसो हि देवाः ।" शतपथ ब्रा.) अमृत, मरणादि दुःखरहित मोक्षपद में सब दुःखों से छूट के सर्वव्यापी पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होके परमानन्द में सदैव रहते हैं । "तृतीये" एक स्थूल (जगत् पृथिव्यादि) दूसरा सूक्ष्म (आदिकारण) तीसरा-सर्वदोषरहित, अनन्तानन्दस्वरूप परब्रह्म-उस धाम में "अध्यैरयन्त" धर्मात्मा विद्वान् लोग स्वच्छन्द (स्वेच्छा से) वर्त्तते हैं, सब बाधाओं से छूट के विज्ञानवान् शुद्ध होके देश, काल, वस्तु के परिच्छेदरहित सर्वगत "धामन्" आधारस्वरूप परमात्मा में रहते हैं, उससे दुःखसागर में कभी नहीं गिरते ॥६॥

यतो यतः समीहसे ततो नोऽअभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥७॥ यजु. ३६।२२॥

व्याख्यान - हे महेश्वर दयालो ! जिस जिस देश से आप "समीहसे" सम्यक् चेष्टा करते हो उस उस देश से हमको अभय करो अर्थात् जहां जहां से हमको भय प्राप्त होने लगे, वहां वहां से सर्वथा हम लोगों को अभय (भयरहित) करो तथा प्रजा से हमको सुख करो । हमारी प्रजा सब दिन सुखी रहे । भय देनेवाली कभी न हो तथा पशुओं से भी हमको अभय करो, किंच किसी से किसी प्रकार का

भय हम लोगों को आपकी कृपा से कभी न हो जिससे हम लोग निर्भय होके सदैव परमानन्द को भोगें और निरन्तर आपका राज्य तथा आपकी भक्ति करें ।।७।।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।८।।

व्याख्यान - सहस्रशीर्षादि विशेषणोक्त पुरुष सर्वत्र परिपूर्ण (पूर्णत्वात्पुरि शयनाद्वा पुरुष इति निरुक्तोक्तेः) है, उस पुरुष को मैं जानता हूं अर्थात् सब मनुष्यों को उचित है कि उस परमात्मा को अवश्य जानें, उसको कभी न भूलें, अन्य किसी को ईश्वर न जानें। वह कैसा है कि "महान्तम्" बड़ों से भी बड़ा, उससे बड़ा वा तुल्य कोई नहीं है "आदित्यवर्णम्" आदित्य का रचक और प्रकाशक वही एक परमात्मा है तथा वह सदा स्वप्रकाशस्वररूप ही है, किंच तमसः परस्तात्" तम जो अन्धकार अविद्यादि दोष उससे रहित ही है तथा स्वभक्त, धर्मात्मा, सत्य-प्रेमी जनों को भी अविद्यादिदोषरहित सद्यः करनेवाला वही परमात्मा है। विद्वानों का ऐसा निश्चय है कि परब्रह्म के ज्ञान और उसकी कृपा के विना कोई जीव कभी सुखी नहीं होता। "तमेव विदित्वेत्यादि" उस परमात्मा को जान के ही जीव मृत्यु को उल्लङ्घन कर सकता है, अन्यथा नहीं क्योंकि "नाऽन्यः, पन्था, विद्यतेऽयनाय" विना परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के मुक्ति का मार्ग कोई नहीं है, ऐसी परमात्मा की दृढ़ आज्ञा है। सब मनुष्यों को इसमें वर्त्तना चाहिये और सब पाखण्ड और जञ्जाल अवश्य छोड़ देना चाहिये ।।८।।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेही।
बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि ।।९।।

यजु. १९।९।।

व्याख्यान - हे स्वप्रकाश ! अनन्ततेज ! आप अविद्यान्धकार से रहित हो, किंच सत्य विज्ञान तेजःस्वरूप हो, आप कृपादृष्टि से मुझमें वही तेज धारण करो जिससे मैं निस्तेज, दीन और भीरु कहीं कभी न होऊं। हे अनन्तवीर्य परमात्मा ! आप वीर्यस्वरूप हो, आप सर्वोत्तम बल स्थिर मुझमें भी रक्खें। हे अनन्तपराक्रम !

आप ओज: (पराक्रमस्वरूप) हो सो मुझमें भी उसी पराक्रम को सदैव धारण करो। हे दुष्टानामुपरि क्रोधकृत् ! मुझमें भी दुष्टों पर क्रोध धारण कराओ। हे अनन्त सहनस्वरूप ! मुझमें भी आप सहनसामर्थ्य धारण करो अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इनके तेजादि गुण कभी मुझमें से दूर न हों जिससे मैं आपकी भक्ति का स्थिर अनुष्ठान करूं और आपके अनुग्रह से संसार में भी सदा सुखी रहूं ॥९॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परित्य सर्वा: प्रदिशो दिशश्च।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश ॥१०॥

यजु. ३२।११॥

व्याख्यान - सब जीवों में (अर्थात् आकाश और प्रकृति से लेके पृथिवीपर्य्यन्त सब संसार में) वह परमेश्वर व्याप्त होके परिपूर्ण भर रहा है तथा सब लोक, सब पूर्वादि दिशा और ऐशान्यादि उपदिशा, ऊपर, नीचे अर्थात् एक कण भी उनके विना अपर्याप्त (खाली) नहीं। "प्रथमजाम्" प्रथमोत्पन्न जीव सब संसार से आदीकार्य जीवको ही समझना सो जीव अपने आत्मा से अत्यन्त सत्याचरण, विद्या, श्रद्धा, भक्ति से "ऋतस्य" यथार्थ सत्यस्वरूप परमात्मा को "उपस्थाय" यथावत् जान उपस्थित (निकट प्राप्त) "अभिसंविवेश" अभिमुख होके उसमें प्रविष्ट अर्थात् परमानन्द स्वरूप परमात्मा में प्रवेश करके, सब दु:खों से छूट उसी परमानन्द में रहता है ॥१०॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्न:।
भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्त: स्याम ॥११॥

यजु. ३४।३६॥

व्याख्यान - हे भगवन् ! परमैश्वर्यवन् ! "भग" ऐश्वर्य के दाता ! संसार वा परमार्थ में आप ही हो तथा "भगप्रणेत:" आपके ही स्वाधीन सकल ऐश्वर्य है अन्य किसी के आधीन नहीं, आप जिसको चाहो उसको ऐश्वर्य देओ सो आप कृपा से हम लोगों का दारिद्र्य छेदन करके हमको परमैश्वर्यवाले करें क्योंकि ऐश्वर्य के प्रेरक आप ही हो। हे "सत्यराध:" भगवन् ! सत्यैश्वर्य की सिद्धि करनेवाले आप ही हो सो आप नित्य ऐश्वर्य हमको दीजिये तथा जो मोक्ष कहाता है उस सत्य ऐश्वर्य का दाता आपसे भिन्न कोई भी नहीं है। हे सत्यभग ! पूर्ण ऐश्वर्य सर्वोत्तम बुद्धि

हमको आप दीजिये जिससे हम लोग आपके गुण और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान, ज्ञान इनको यथावत् प्राप्त हों, हमको सत्यबुद्धि, सत्यकर्म और सत्गुणों को "उदव:" (उद्गमय प्रापय) प्राप्त कर, जिससे हम लोग सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जाने "भग प्र नो जनय" हे सर्वैश्वर्योत्पादक ! हमारे लिये ऐश्वर्य को अच्छे प्रकार से उत्पन्न कर, सर्वोत्तम गाय, घोड़े और मनुष्य इनसे सहित अत्युत्तम ऐश्वर्य हमको सदा के लिये दीजिये । हे सर्वशक्तिमन् ! आपकी कृपा से सब दिन हम लोग उत्तम उत्तम पुरुष, स्त्री और सन्तान, भृत्यवाले हों । आपसे हमारी अधिक यही प्रार्थना है कि कोई मनुष्य हम में दुष्ट और मूर्ख न रहे, न उत्पन्न हो जिससे हम लोगों की सर्वत्र सत्कीर्ति हो और निन्दा कभी न हो ।।११।।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य वाह्यत: ।।१२।।

यजु. ४०।५।।

व्याख्यान - "तद् एजति" वह परमात्मा सब जगत् को यथायोग्य अपनी अपनी चाल पर चला रहा है, सो अविद्वान् लोग ईश्वर में भी आरोप करते है कि वह भी चलता होगा, परन्तु वह सब में पूर्ण है, कभी चलायमान नहीं होता, अत एव "तैन्नजति" (यह प्रमाण है) स्वत: वह परमात्मा कभी नहीं चलता, एकरस निश्चल होके भरा है । विद्वान् लोग इसी रीति से ब्रह्म को जानते हैं । 'तद्दूरे" अधर्मात्मा अविद्वान्, विचारशून्य, अजितेन्द्रिय, ईश्वरभक्ति रहित इत्यादि दोषुयुक्त मनुष्यों से वह ईश्वर बहुत दूर है अर्थात् वे कोटि कोटि वर्ष तक उसको नहीं प्राप्त होते, वे तब तक जन्ममरणादि दु:खसागर में इधर-उधर घूमते फिरते हैं कि जब तक उसको नहीं जानते "तद्वन्तिके" सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, जितेन्द्रिय, सर्वजनोपकारक, विद्वान्, विचारशील पुरुषों के 'अन्तिके' अत्यन्त निकट है, किंच वह सबके आत्माओं के बीच में अन्तर्यामी व्यापक होके सर्वत्र पूर्ण भर रहा है, वह आत्मा का भी आत्मा है क्योंकि परमेश्वर सब जगत् के भीतर और बाहर तथा मध्य अर्थात् एक तिलमात्र भी उसके विना खाली नहीं है, वह अखण्डैकरस सबमें व्यापक हो रहा है, उसी को जानने से ही सुख और मुक्ति होती है अन्यथा नहीं ।।१२।।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतांश्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतांस्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । स्तोमश्च यजुश्चऽऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च । स्वर्देवाऽअगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजाऽअभूम वेट् स्वाहा ॥१३॥ यजु. १८।२९॥

व्याख्यान - (यज्ञो वै विष्णुः, यज्ञो वै ब्रह्मेत्याद्यैतरेयशतपथब्राह्मणश्रु) यज्ञ यजनीय जो सब मनुष्यों का पूज्य इष्टदेव परमेश्वर उसके अर्थ अतिश्रद्धा से सब मनुष्य सर्वस्व समर्पण यथावत् करें, यही इस मन्त्र में उपदेश और प्रार्थना है कि हे सर्वस्वामिन् ईश्वर ! जो यह आपकी आज्ञा है कि सब लोग सब पदार्थ मेरे अर्पण करें, इस कारण हम लोग "आयुः" उमर, प्राण, चक्षु (आंख), कान, वाणी मन, आत्मा, जीव, ब्रह्म, वेदविद्या और विद्वान्, ज्योति (सूर्यादि लोक अग्न्यादि पदार्थ), स्वर्ग (सुखसाधन), पृष्ठ (पृथिव्यादि सब लोक आधार) तथा पुरुषार्थ, यज्ञ (जो जो अच्छा काम हम लोग करते हैं), स्तोम, स्तुति, यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद, चकार से अथर्ववेद, बृहद्रथन्तर, महारथन्तर, साम इत्यादि सब पदार्थ आपके समर्पण करते हैं । हम लोग तो केवल आपके ही शरण हैं । जैसी आपकी इच्छा हो वैसा हमारे लिये आप कीजिये, परन्तु हम लोग आपके सन्तान आपकी कृपा से "स्वरगन्म" उत्तम सुख को प्राप्त हों । जब तक जीवें तब तक सदा चक्रवर्ती राज्यादि भोग से सुखी रहें । और मरणानन्तर भी हम सुखी ही रहें । हे महादेवामृत ! हम लोग देव (परमविद्वान्) हों तथा अमृत मोक्ष जो आपकी प्राप्ति उसको प्राप्त हों । "वेट्स्वाहा" आपकी आज्ञा के पालन और जिससे आपकी प्राप्ति हो उस क्रिया में सदा तत्पर रहें । तथा अन्तर्यामी आप हृदय में आज्ञा करें । अर्थात् जैसा हमारे हृदय में ज्ञान हो वैसा ही सदा भाषण करें, इससे विपरीत कभी नहीं । हे कृपानिधे ! हम लोगों का योगक्षेम (सब निर्वाह) आप ही सदा करो । आपके सहाय से सर्वत्र हमको विजय और सुख मिले ॥१३॥

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सँरराणस्त्रीणि ज्योतींथ्ऽषि सचते स षोडशी ॥१४॥

यजु. ८।३६॥

व्याख्यान - जिससे बड़ा तुल्य वा श्रेष्ठ न हुआ, न है और न कोई कभी होगा, उसको परमात्मा कहना । जो "विश्वा भुवनानि" सब भवन (लोक) सब पदार्थों के निवासस्थान असंख्यात लोकों को "आविवेश" प्रविष्ट होके पूर्ण हो रहा है, वही ईश्वर प्रजा का पति (स्वामी) है । सब प्रजा को रमा रहा और सब प्रजा में रम रहा है । "त्रीणीत्यादि" तीन ज्योति अग्नि, वायु और सूर्य इनको जिसने रचा है, सब जगत् के व्यवहार और पदार्थविद्या की उत्पत्ति के लिये इन तीनों को मुख्य समझना । "स षोडशी" सोलहकला जिसने उत्पन्न की हैं, इससे सोलह कलावान् ईश्वर कहाता है । वे सोलहकला ये हैं - ईक्षण (विचार) १, प्राण २, श्रद्धा ३, आकाश ४, वायु ५, अग्नि ६, जल ७, पृथिवी ८, इन्द्रिय ९, मन १०, अन्न ११, वीर्य (पराक्रम) १२, तप (धर्मानुष्ठान) १३, मन्त्र (वेदविद्या) १४, कर्म (चेष्टा) १५ और लोक (लोकों में नाम) १६, इतनी कलाओं के बीच में सब जगत् है और परमेश्वर में अनन्तकला हैं । उसकी उपासना छोड़ के जो दूसरे की उपासना करता है वह सुख को प्राप्त कभी नहीं होता किन्तु सदा दुःख में ही पड़ा रहता है ॥१४॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥१५॥ यजु. ३।२४॥

व्याख्यान - ("ब्रह्म ह्यग्निः" इत्यादि शतपथादिप्रामाण्याद् ब्रह्मै वात्राग्निर्ग्राह्यः) हे विज्ञानस्वरूपेश्वराग्ने ! आप हमारे लिये "सूपायनः" सुख से प्राप्त, श्रेष्ठोपाय के प्रापक, अत्युत्तम स्थान के दाता कृपा से सर्वदा हो तथा रक्षक भी हमारे आप ही हो । "स नः पितेव सूनवे" जैसे करुणामय पिता अपने पुत्र को सुखी ही रखता है, वैसे आप हमको सदा सुखी रक्खो क्योंकि जो हम लोग बुरे होंगे तो उन आपकी शोभा नहीं होना, किञ्च सन्तानों को सुधारने से ही पिता की शोभा और बड़ाई होती है, अन्यथा नहीं ॥१५॥

विभूरसि प्रवाहणः बह्निरसि हव्यवाहनः ।
श्वात्रोऽसि प्रचेताः । तुथोऽसि विश्ववेदाः ।।
उशिगसि कविः । अङ्घारिरसि बम्भारिः । अवस्यूरसि दुवस्वान् ।
शुन्ध्यूरसि मार्जालीयः सम्राडसि कृशानुः । परिषद्योऽसि पवमानः ।
नभोऽसि प्रतक्वा । मृष्टोऽसि हव्यसूदनः । ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ।।
समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः । अजोऽस्येकपात् । अहिरसि बुध्न्यः ।
वागस्यैन्द्रमसि सदोऽसि । ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम् ।
अध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ।।
१६।१७।१८। यजु. ५।३१।३२।३३।।

व्याख्यान - हे व्यापकेश्वर ! आप विभु हो अर्थात् सर्वत्र प्रकाशित वैभवैश्वर्ययुक्त हो किन्तु और कोई नहीं, विभु होके आप सब जगत् के प्रवाहण (स्वस्वनियमपूर्वक चलानेवाले) तथा सबके निर्वाहकारक भी हो । हे स्वप्रकाशक सर्वरसवाहकेश्वर ! आप वह्नि हैं अर्थात् सब हव्य उत्कृष्ट रसों के भेदक, आकर्षक तथा यथावत् स्थापक हो । हे आत्मन् ! आप शीघ्र व्यापनशील हो तथा प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप, प्रकृष्ट ज्ञान के देनेवाले हो । हे सर्ववित् ! आप तुथ और विश्ववेदा हो, "तुथो वै ब्रह्म" (यह शतपथ की श्रुति है) सब जगत् में विद्यमान, प्राप्त और लाभ करानेवाले हो ।।१६।।

हे सर्वप्रिय ! आप "उशिक्" कमनीय स्वरूप अर्थात् सब लोग जिसको चाहते हैं क्योंकि आप "कवि" पूर्ण विद्वान् हो तथा आप "अङ्घारि" हो अर्थात् स्वभक्तों का जो अघ (पाप) उसके अरि (शत्रु) हो उस समस्त पांप के नाशक हो तथा "बम्भारिः" स्वभक्तों और सब जगत् के पालन तथा धारण करनेवाले हो "अवस्यूरसि दुवस्वान्" अन्नादि पदार्थ अपने भक्तों, धर्मात्माओं को देने की इच्छा सदा करते हो तथा परिचरणीय विद्वानों से सेवनीयतम हो । "शुन्ध्युरसि, मार्ज्जालीयः" शुद्धस्वरूप और जगत् के शोधक तथा पापों का मार्जन (निवारण) करनेवाले आप ही हो, अन्य कोई नहीं । "सम्राडसि कृशानुः" सब राजाओं के महाराज तथा कृश दीनजनों के प्राण के सुखदाता

आप ही हो "परिषद्योसि पवमानः" हे न्यायकारिन् ! पवित्र परमेश्वर, सभा के आज्ञापक, सभ्य, सभापति, सभाप्रिय, सभारक्षक आप ही हो तथा पवित्र स्वरूप, पवित्रकारक, सभा से ही सुखदायक, पवित्रप्रिय आप ही हो। "नभोऽसि प्रतक्वा" हे निर्विकार ! आकाशवत् आप क्षोभरहित अतिसूक्ष्म होने से आपका नाम 'नभ' है तथा "प्रतक्वा" सबके ज्ञाता, सत्यासत्यकारी जनों के कर्मों की साक्ष्य रखनेवाले कि जिसने जैसा पाप वा पुण्य किया हो, उसको वैसा फल मिले, अन्य का पुण्य वा पाप अन्य को कभी न मिले। "मृष्टोसि हव्यसूदनः" मृष्ट शुद्धस्वरूप सब पापों के मार्जक, शोधक तथा "हव्यसूदनः" मिष्ट, सुगन्ध, रोगनाशक, पुष्टिकारक इन द्रव्यों से वायु-वृष्टि की शुद्धि करने-करानेवाले हो, अत एव सब द्रव्यों के विभागकर्ता आप ही हो, इससे आपका नाम "हव्यसूदन" है। "ऋत-धामासि स्वर्ज्योतिः" हे भगवन् ! आपका ही धाम स्थान सर्वगत सत्य और यथार्थ स्वरूप है, यथार्थ (सत्य) व्यवहार में ही आप निवास करते हो "स्वः" आप सुखस्वरूप और सुखकारक हो तथा 'ज्योतिः' स्वप्रकाश और सबके प्रकाशक आप ही हो ॥१७॥

"समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः" हे द्रवणीयस्वरूप ! सब भूतमात्र आप ही में द्रव हैं क्योंकि कार्य-कारण में ही मिले हैं। आप सबके कारण हो तथा सहज से सब जगत् को विस्तृत किया है, इससे आप "विश्वव्यचाः" हैं। "अजोस्येकपात्" आपका जन्म कभी नहीं होता और यह सब जगत् आपके किञ्चिन्मात्र एक देश में है, आप अनन्त हो। "अहिरसि बुध्न्यः" आपकी हीनता कभी नहीं होती तथा सब जगत् के मूलकारण और अन्तरिक्ष में भी सदा आप ही पूर्ण रहते हो। "वागस्यैन्द्रमसि सदोसि" सब शास्त्र के उपदेशक अनन्तविद्यास्वरूप होने से आप वाक् हो, परमैश्वर्यस्वरूप सब विद्वानों में अत्यन्त शोभायमान होने से आप ऐन्द्र हो, सब संसार आप में ठहर रहा है, इससे आप सदा (सभास्वरूप) हो। "ऋतस्य द्वारौ मा मा संताप्तम्" सत्यविद्या और धर्म ये दोनों मोक्षस्वरूप आपकी प्राप्ति के द्वार हैं, उनको संतापयुक्त हम लोगों के लिये कभी मत रक्खो किन्तु सुखस्वरूप ही खुले रक्खो, जिससे हम लोग सहज से आपको प्राप्त हों। "अध्वनामित्यादि" हे अध्वपते ! परमार्थ और व्यवहार मार्गों में मुझको कहीं क्लेश मत होने दे किन्तु उन मार्गों में मुझको स्वस्ति (आनन्द) आपकी कृपा से रहे, किसी प्रकार का दुःख हमको न रहे ॥१८॥

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
एनस एनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चा
विद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥१९॥ यजु. ८।१३॥

व्याख्यान - हे सर्वपापप्रणाशक ! "देवकृत:" इन्द्रिय, विद्वान् और दिव्यगुणयुक्त जन के दु:ख के नाशक एक ही आप हो, अन्य कोई नहीं, एवं मनुष्य (मध्यस्थजन), पितृ (परमविद्यायुक्त जन) और "आत्मकृत" जीव के पापों से तथा 'एनस" पापों से भी बड़े पापों से आप ही 'अवयजन' हो अर्थात् सर्व पापों से अलग हो और हम सब मनुष्यों को भी पाप से दूर रखनेवाले एक आप ही दयामय पिता हो । हे महानन्तविद्य ! जो जो मैंने विद्वान् वा अविद्वान् होके पाप किया हो, उन सब पापों का छुड़ानेवाला आपके विना कोई भी इस संसार में हमारा शरण नहीं है, इससे हमारे अविद्यादि सब पाप छुड़ा के शीघ्र हमको शुद्ध करो ॥१९॥

हिरण्यगर्भा: समवर्त्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेकऽआसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२०॥
यजु. १३।४॥

व्याख्यान - जब सृष्टि नहीं हुई थी तब एक अद्वितीय "हिरण्यगर्भ" (जो सूर्य्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्तिस्थान उत्पादक) है सो ही प्रथम था । वह सब जगत् का सनातन प्रादुर्भूत प्रसिद्ध पति है, वही परमात्मा पृथिवी से ले के प्रकृतिपर्यन्त जगत् को रच के धारण करता है । "कस्मै" (क: प्रजापति:, प्रजापतिर्वैकस्तस्मै देवाय, शतपथे) प्रजापति जो परमात्मा उसकी पूजा आत्मादि पदार्थों के समर्पण से यथावत् करें, उससे भिन्न की उपासना लेशमात्र भी हम लोग न करें, जो परमात्मा को छोड़ के वा उसके स्थान में दूसरे की पूजा करता है, उसकी और उस देश भर की अत्यन्त दुर्दशा होती है यह प्रसिद्ध है, इससे चेतो मनुष्यो ! जो तुमको सुख की इच्छा हो तो एक निराकार परमात्मा की यथावत् भक्ति करो अन्यथा तुमको कभी सुख न होगा ॥२०॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥
शं नो वातः पवतांशं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभिवर्षतु ॥
अहानि शं भवन्तु नः शँरात्रीः प्रतिधीयताम् ।
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥

२१।२२।२३॥ यजु. ३६।८।१०।११॥

व्याख्यान - हे इन्द्र ! आप परमैश्वर्ययुक्त सब संसार के राजा हो, सर्वप्रकाशक हो । हे रक्षक ! आप कृपा से हम लोगों के "द्विपदे" जो पुत्रादि, उनके लिये परमसुखदायक हो तथा "चतुष्पदे" हस्ती अश्व और गवादि पशुओं के लिये भी परमसुखदायक हो, जिससे हम लोगों को सदा आनन्द ही रहे ॥२१॥

हे सर्वनियन्तः ! हमारे लिये सुखकारक, सुगन्ध, शीतल और मन्द-मन्द वायु सदैव चले एवं सूर्य भी सुखकारक तपे तथा मेघ भी सुख का शब्द लिये अर्थात् गर्जनपूर्वक सदैव काल काल में सुखकारक वर्षा वर्षे, जिससे आपके कृपापात्र हम लोग सुखानन्द ही में सदा रहें ॥२२॥

हे क्षणादि कालपते ! सब दिवस आपके नियम से सुखरूप ही हमको हों, हमारे लिये सर्व रात्रि भी आनन्द से बीतें । हे भगवन् ! दिन और रात्रियों को सुखकारक ही आप स्थापन करो, जिससे सब समय में हम लोग सुखी ही रहें । हे सर्वस्वामिन् ! "इन्द्राग्नी" सूर्य तथा अग्नि ये दोनों हमको आपके अनुग्रह से और नानाविध रक्षाओं से सुखकारक हों "इन्द्रावरुणा रातहव्या" हे प्राणाधार ! होम से शुद्धिगुणयुक्त हुए आपकी प्रेरणा से वायु और चन्द्र हम लोगों के लिये सुखरूप ही सदा हों "इन्द्रापूषणा, वाजसातौ" हे प्राणपते ! आपकी रक्षा से पूर्ण आयु और बलयुक्त प्राणवाले हम लोग अपने अत्यन्त पुरुषार्थयुक्त युद्ध में स्थिर रहें, जिससे शत्रुओं के सम्मुख हम निर्बल कभी न हों । "इन्द्रासोमा सुविताय शंयोः" (प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी इत्यादि शतपथे) हे महाराज ! आपके प्रबन्ध से राजा और प्रजा परस्पर विद्यादि सत्यगुणयुक्त होके अपने ऐश्वर्य का उत्पादन करें तथा आपकी कृपा से

परस्पर प्रीतियुक्त हों, अत्यन्त प्रसन्न हों और हम भी प्रसन्नता से आप और जो आपकी सत्य आज्ञा उसमें ही तत्पर हों ॥२३॥

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् । त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत् ॥२४॥

यजु. ३२।९॥

व्याख्यान - हे वेदादिशास्त्र और विद्वानों के प्रतिपादन करने योग्य ! जो अमृत (मरणादि दोषरहित) मुक्तों का धाम (निवासस्थान) सर्वगत सबका धारण और पोषण करनेवाला, सबकी बुद्धियों का साक्षी ब्रह्म है, उस आपका उपदेश तथा धारण जो विद्वान् जानता है, वह गन्धर्व कहाता है। (गच्छतीति गं - ब्रह्म, तद्धरतीति स गन्धर्वः) सर्वगत ब्रह्म को जो धारण करनेवाला उसका नाम गन्धर्व है तथा परमात्मा के तीन पद हैं - जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने के सामर्थ्य को तथा ईश्वर को जो स्वहृदय में जानता है, वह पिता का भी पिता है अर्थात् विद्वानों में भी विद्वान् है ॥२४॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिःसर्वꣳ शान्तिरशान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥२५॥ यजु ३६।१७॥

व्याख्यान - हे सर्वदुःख की शान्ति करनेवाले ! सब लोकों के ऊपर जो आकाश सो सर्वदा हम लोगों के लिये शान्त (निरुपद्रव) सुखकारक ही रहे, अन्तरिक्ष मध्यस्थ लोक और उसमें स्थित वायु आदि पदार्थ, पृथिवी, पृथिवीस्थ पदार्थ, जल, जलस्थ पदार्थ, औषधि, तत्रस्थ गुण, वनस्पति, तत्रस्थ पदार्थ, विश्वेदेव (जगत् के सब विद्वान्) तथा विश्वद्योतक वेदमन्त्र, इन्द्रिय, सूर्यादि, उनकी किरण, तत्रस्थ गुण, ब्रह्म - परमात्मा तथा वेदशास्त्र, स्थूल और सूक्ष्म, चराऽचर जगत् ये सब पदार्थ हमारे लिये हे सर्वशक्तिमन् परमात्मा ! आपकी कृपा से शान्त (निरुपद्रव) सदानुकुल सुखदायक हों, मुझको भी वह शान्ति प्राप्त हो, जिससे मैं भी आपकी कृपा से शान्त, दुष्टक्रोधादि उपद्रवरहित होऊं तथा सब संसारस्थ जीव भी दुष्टक्रोधादि उपद्रवरहित ही हों ॥२५॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥२६॥ यजु. १६।४१॥

व्याख्यान - हे कल्याणस्वरूप, कल्याणकर ! आप 'शंभव' हो (मोक्ष सुखस्वरूप और मोक्ष-सुख के करनेवाले हो), आपको नमस्कार है, आप 'मयोभव' हो, सांसारिक सुख के करनेवाले आपको मैं नमस्कार करता हूं, आप 'शंकर' हो, आप से ही जीवों का कल्याण होता है, अन्य से नहीं तथा 'मयस्कर' अर्थात् मन, इन्द्रिय, प्राण और आत्मा को सुख करनेवाले आप ही हो । आप 'शिव' (मङ्गलमय) हो तथा 'शिवतर' (अत्यन्त कल्याणस्वरूप और कल्याणकारक) हो, इससे आपको हम लोग वारम्बार नमस्कार करते हैं (नमो नम इति यज्ञः, शतपथे) श्रद्धा-भक्ति से जो जन ईश्वर को नमस्कारादि करता है, सो मङ्गलमय ही होता है ॥२६॥

भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२७॥

यजु. २५।२१॥

व्याख्यान - हे देवेश्वर ! देव विद्वानो ! हम लोग कानों से सदैव 'भद्र' कल्याण को ही सुनें, अकल्याण की बात भी न सुनें । हे यजनीयेश्वर ! हे यज्ञकर्त्तारो ! हम आँखों से कल्याण (मङ्गलसुख) को ही सदा देखें, हे जनो ! हे जगदीश्वर ! हमारे सब अङ्ग-उपाङ्ग (श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपाङ्ग) स्थिर (दृढ़) सदा रहें, जिनसे हम लोग स्थिरता से आपकी स्तुति और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान सदा करें तथा हम लोग आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक आयु को विविध सुखपूर्वक प्राप्त हों अर्थात् सदा सुख में ही रहें ॥२७॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन ऽआवः ।
स बुध्न्या ऽउपमाऽअस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥२८॥

यजु. १३।३॥

व्याख्यान - हे महीय परमेश्वर ! आप बड़ों से भी बड़े हो, आप से बड़ा वा

आपके तुल्य कोई नहीं है "जज्ञानम्" सब जगत् में व्यापक (प्रादुर्भूत) हो, सब जगत् के प्रथम (आदिकारण) आप ही हो, सूर्यादि लोक "सीमत:" सीमा से युक्त (मर्यादा सहित) "सुरुच:" आपसे प्रकाशित हैं, "पुरस्नात्" इनको पूर्व रच के आप ही धारण कर रहे हो, (व्याव:) इन सब लोकों को विविध नियमों से पृथक् पृथक् यथायोग्य वर्त्ता रहे हो, "वेन:" आपके आनन्दस्वरूप होने से ऐसा कोई जन संसार में नहीं है जो आपकी कामना न करे किन्तु सब ही आपको मिला चाहते हैं तथा आप अनन्त विद्यायुक्त हो, सब रीति से रक्षक आप ही हो । सो ही परमात्मा "बुध्न्या:" अन्तरिक्षान्तर्गत दिशादि पदार्थों को "विव:" विवृत (विभक्त) करता है । वे अन्तरिक्षादि "उपमा" सब व्यवहारों में उपयुक्त होते हैं और वे इस विविध जगत् के निवासस्थान हैं । "सत्" विद्यमान स्थूल जगत् की "योनि" आदि कारण आपको ही वेद, शास्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं, इससे इस जगत् के माता-पिता आप ही हैं, हम लोगों के भजनीय इष्टदेव हैं ॥२८॥

सुमित्रिया न ऽआपओषधय: सन्तु ।
दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म: ॥२९॥

यजु. (६।२२॥) ३६।२३॥

व्याख्यान - हे सर्वमित्रसम्पादक ! आपकी कृपा से प्राण और जल तथा विद्या और औषधी "सुमित्रिया:" (सुखदायक) हम लोगों के लिये सदा हों, कभी प्रतिकूल न हों और जो हमसे द्वेष अप्रीति शत्रुता करता है तथा जिस दुष्ट से हम द्वेष करते हैं, हे न्यायकारिन् ! उसके लिये "दुर्मित्रिया:" पूर्वोक्त प्राणादि प्रतिकूल दु:खकारक ही हों ! अर्थात् जो अधर्म करे उसको आपके रचे जगत् के पदार्थ दु:खदायक ही हों, जिससे वह (अधर्म न करे और) हमको दु:ख न दे सके, पुन: हम लोग सदा सुखी ही रहें ॥२९॥

य ऽ इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता न: ।
स ऽ आशिषाद्रविणमिच्छमान: प्रथमच्छदवराँ२॥ऽआविवेश ॥३०॥

यजु. १७।१७॥

व्याख्यान - "होता" उत्पत्ति समय में देने और प्रलय समय में सबको

लेनेवाला परमात्मा ही है । "ऋषिः" सर्वज्ञ इन सब लोक-लोकान्तर भुवनों का अपने सामर्थ्यकारण में होम (प्रलय) करके "न्यसीदत्" नित्य अवस्थित रहता है, सो ही हमारा पिता है, फिर जब "द्रविण" द्रव्यरूप जगत् को स्वेच्छा से उत्पन्न किया चाहता है, उस "आशिषा" सामर्थ्य से यथायोग्य विविध जगत् को सहजस्वभाव से रच देता है । इस चराचर "प्रथममच्छत्" विस्तीर्ण जगत् को रच के अनन्तस्वरूप से आच्छादित किया है और अन्तर्यामी साक्षीस्वरूप उसमें प्रविष्ट हो रहा है अर्थात् बाहर और भीतर परिपूर्ण हो रहा है, वही हमारा निश्चित पिता है, उसकी सेवा छोड़ के जो मनुष्य अन्य मूर्त्यादि की सेवा करता है, वह कृतघ्नत्वादि महादोषयुक्त हो के सदैव दुःखभागी होता है । जो मनुष्य परम दयामय पिता की आज्ञा में रहता है, वह सर्वानन्द का सदैव भोग करता है ॥३०॥

इषे पिन्वस्व । ऊर्जे पिन्वस्व । ब्रह्मणे पिन्वस्व । क्षत्राय पिन्वस्व । द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व । धर्मासि सुधर्म । अमेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥३१॥ यजु. ३८।१४॥

व्याख्यान - हे सर्वसौख्यप्रदेश्वर ! हमको "इषे" उत्तमान्न के लिये पुष्ट कर, अन्न के अपचन वा कुपच के रोगों से बचा तथा विना अन्न के दुःखी हम लोग कभी न हों । हे महाबल ! "ऊर्जे" अत्यन्त पराक्रम के लिये हमको पुष्ट कर । हे वेदोत्पादक ! "ब्रह्मणे" सत्य वेदविद्या के लिये बुद्ध्यादि बल से सदैव हमको पुष्ट और बलयुक्त कर । हे महाराजाधिराज परब्रह्मन् ! "क्षत्राय" अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर, अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों । हे स्वर्गपृथिवीश ! "द्यावापृथिवीभ्याम्" स्वर्ग (परमोत्कृष्ट मोक्षसुख) पृथिवी (संसारसुख) इन दोनों के लिये हमको समर्थ कर । हे सुष्ठु धर्मशील ! तु धर्मकारी हो तथा धर्मस्वरूप ही हो । हम लोगों को भी कृपा से धर्मात्मा कर । "अमेनि" तु निर्वैर है, हमको भी निर्वैर कर तथा कृपादृष्टि से "अस्मै" (अस्मभ्यम्) हमारे लिये "नृम्णानि" विद्या, पुरुषार्थ, हस्ती, अश्व, सुवर्ण, हीरादिरत्न, उत्कृष्ट राज्य, उत्तम पुरुष और प्रीत्यादि पदार्थों को धारण कर, जिससे

हम लोग किसी पदार्थ के विना दुःखी न हों। हे सर्वाधिपते ! "ब्राह्मण" (पूर्णविद्यादि सद्गुणयुक्त) "क्षत्र" (बुद्धि, विद्या तथा शौर्यादि गुणयुक्त) "विश" अनेक विद्योद्यम, बुद्धि, विद्या, धन और धान्यादि बलयुक्त यथा "शूद्रादि" भी सेवादि गुणयुक्त उत्तम हमारे राज्य में हों, इन सबका धारण आप ही करो, जिससे अखण्ड ऐश्वर्य हमारा आपकी कृपा से सदा बना रहे ॥३१॥

किँ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥३२॥

यजु. १७।१८॥

व्याख्यान - (प्रश्नोत्तर विद्या से-) इस संसार का अधिष्ठान क्या है ? कारण और उत्पादक कौन है ? किस प्रकार से है ? तथा रचना करनेवाले ईश्वर का अधिष्ठानादि क्या है ? तथा निमित्तकारण और साधन-जगत् वा ईश्वर के क्या हैं? (उत्तर) "यतः" जिसका विश्व (जगत् कर्म) किया हुआ है, उस 'विश्वकर्मा' परमात्मा ने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत् को रचा है, वही इस सब जगत् का अधिष्ठानि निमित्त और साधनादि है, उसने अपने अनन्त सामर्थ्य से इस सब जीवादि जगत् को यथायोग्य रचा और भूमि से ले के स्वर्ग पर्यन्त रच के स्व महिमा से "और्णोत्" आच्छादित कर रक्खा है और परमात्मा का अधिष्ठानादि परमात्मा ही है, अन्य कोई नहीं। सबका भी उत्पादन, रक्षण, धारणादि वही करता है तथा आनन्दमय है और वह ईश्वर कैसा है ? कि "विश्वचक्षाः" सब संसार का द्रष्टा है, उसको छोड़ के अन्य का आश्रय जो करता है, वह दुःखसागर में क्यों न डूबेगा ? ॥३२॥

तनूपाऽ अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि। आयुर्दाऽ अग्नेऽस्यायुर्मे देहि। वर्चोदाऽ अग्नेऽसि वर्चो मे देहि।
अग्ने यन्मे तन्वाऽ ऊनं तन्मऽआपृण ॥३३॥ यजु. ३।१७॥

व्याख्यान - हे सर्वरक्षकेश्वराग्ने ! तू हमारे शरीर का रक्षक है। सो शरीर को कृपा से पालन कर, हे महावैद्य ! आप आयु (उमर) बढ़ानेवाले हो, मुझको सुखरूप उत्तमायु दीजिये। हे अनन्त विद्यातेजयुक्त ! आप "वर्चः" विद्यादि तेज

अर्थात् यथार्थ विज्ञान देनेवाले हो, मुझको सर्वोत्कृष्ट विद्यादि तेज देओ, पूर्वोक्त शरीरादि की रक्षा से हमको सदा आनन्द में रक्खो और जो जो कुछ भी शरीररादि में "ऊनम्" न्यून हो, उस उस को कृपादृष्टि से सुख और ऐश्वर्य के साथ सब प्रकार से आप पूर्ण करो, किसी आनन्द वा श्रेष्ठ पदार्थ की न्यूनता हमको न रहे। आपके पुत्र हम लोग जब पूर्णानन्द में रहेंगे तभी आप पिता की शोभा है क्योंकि लड़के-लोग छोटी-बड़ी चीज अथवा सुख पिता-माता को छोड़ किससे माँगे ? सो आप सर्वशक्तिमान् हमारे पिता, सब ऐश्वर्य तथा सुख देनेवालों में पूर्ण हो ॥३३॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥३४॥

यजु. १७।१९॥

व्याख्यान - विश्व (सब जगत् में) जिसका चक्षु (दृष्टि) जिससे अदृष्ट कोई वस्तु नहीं तथा जिसके सर्वत्र मुख, बाहु, पग अन्य श्रोत्रादि भी हैं, जिसकी दृष्टि में अर्थात् सर्वदृक्, सर्ववक्ता, सर्वाधारक और सर्वगत ईश्वर व्यापक है, उसी से जब डरेगा तभी धर्मात्मा होगा, अन्यथा कभी नहीं। वही विश्वकर्मा परमात्मा एक ही अद्वितीय है, पृथिवी से लेके स्वर्गपर्य्यन्त जगत् का कर्त्ता है, जिस जिसने जैसा जैसा पाप वा पुण्य किया है, उस उस को न्यायकारी दयालु जगत्पिता पक्षपात छोड़ के अनन्त बल और पराक्रम इन दोनों बाहुओं से सम्यक् "पतत्रैः" प्राप्त होनेवाले सुख-दुःख फल दोनों से प्राप्त सब जीवों को "धमति" (धमन-कम्पन) यथायोग्य जन्म-मरणादि को प्राप्त करा रहा है। उसी निराकार, अज, अनन्त, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयामय, ईश्वर से अन्य को कभी न मानना चाहिये। वही याचनीय, पूजनीय, हमारा प्रभु स्वामी और इष्टदेव हैं, उसी से सुख हमको होगा, अन्य से कभी नहीं ॥३४॥

भूर्भुवः स्वः। सुप्रजाः प्रजाभिः स्यां सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।
नर्य प्रजां मे पाहि। शꣳस्य पशून्मे पाहि अथर्य पितुं मे पाहि ॥३५॥

यजु. ३।३७॥

व्याख्यान - हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर ! आप "भूः" सदा वर्त्तमान हो "भुवः" वायु आदि पदार्थों के रचनेवाले "स्वः" सुखरूप लोक के रचनेवाले हो "हमको तीन

लोक का सुख दीजिये । हे सर्वाध्यक्ष ! आप कृपा करो, जिससे कि मैं पुत्र-पौत्रादि उत्तम गुणवाली प्रजा से श्रेष्ठ प्रजावाला होऊं। सर्वोत्कृष्ट वीर योद्धाओं से "सुवीरः" युद्ध में सदा विजयी होऊं। हे महापुष्टिप्रद ! आपके अनुग्रह से अत्यन्त विद्यादि तथा सोम ओषधि सुवर्णादि और नैरोग्यादि से सर्वपुष्टियुक्त होऊं। हे "नर्य" नरों के हितकारक ! मेरी प्रजा की रक्षा आप करो, हे "शंस्य" स्तुति करने के योग्य ईश्वर ! हस्त्यश्वादि पशुओं का आप पालन करो, हे "अथर्य" व्यापक ईश्वर ! "पितुम्" मेरे अन्न की रक्षा कर, हे दयानिधे ! हम लोगों को सब उत्तम पदार्थों से परिपूर्ण और सब दिन आप आनन्द में रक्खो ॥३५॥

कि॒ꣳस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥३६॥

यजु. १७।२०॥

व्याख्यान - (प्रश्न) विद्या क्या है ? वन और वृक्ष किसको कहते हैं ? (उत्तर) जिस सामर्थ्य से विश्वकर्मा ईश्वर ने जैसे तक्षा (बढ़ई) अनेकविध रचना के अनेक पदार्थ रचता है, वैसे ही स्वर्ग (सुखविशेष) और भूमि मध्य (सुखवाला लोक) तथा नरक (दुःखविशेष) और सब लोकों को रचा है, उसी को वन और वृक्ष कहते हैं । हे "मनीषिणः" विद्वानो ! जो सब भुवनों का धारण करके सब जगत् में और सबके उपर विराजमान हो रहा है, उसके विषय में प्रश्न तथा उसका निश्चय तुम लोग करो "मनसा" उसके विज्ञान से जीवों का कल्याण होता है, अन्यथा नहीं ॥३६॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥३७॥

यजु. ३६।२४॥

व्याख्यान - वह ब्रह्म, "चक्षुः" सर्वदृक् चेतन है तथा 'देव' अर्थात् विद्वानों के लिये वा मन आदि इन्द्रियों के लिये हितकारक मोक्षादि सुख का दाता है

"पुरस्तात्" सबका आदि प्रथम कारण वही है "शुक्रम्" सबका करनेवाला किंवा शुद्धस्वरूप है "उच्चरत्" प्रलय के ऊर्ध्व वही रहता है, उसी की कृपा से हम लोग शत (१००) वर्ष तक देखें, जीवें, सुनें, कहें, कभी पराधीन न हो अर्थात् ब्रह्मज्ञान, बुद्धि और पराक्रम सहित इन्द्रिय तथा शरीर सब स्वस्थ रहें, ऐसी कृपा आप करें कि कोई अङ्ग मेरा निर्बल (क्षीण) और रोगयुक्त न हो तथा शत (१००) वर्ष से अधिक भी आप कृपा करें कि शत (१००) वर्ष के उपरान्त भी हम देखें, जीवें, सुनें, कहें और स्वाधीन ही रहें ।।३७।।

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ।।३८।।

यजु. १७।२१।।

व्याख्यान - हे सर्वविधायक विश्वकर्मन्नीश्वर ! जो तुम्हरे स्वरचित उत्तम, मध्यम, निकृष्ट त्रिविध धाम (लोक) हैं, उन सब लोकों की शिक्षा हम आपके सखाओं को करो, यथार्थविद्या होने से सब लोकों में सदा सुखी ही रहें तथा इन लोकों के "हविषि" दान और ग्रहण व्यवहार में हम लोग चतुर हों, हे "स्वधावः" स्वसामर्थ्यादि धारण करनेवाले ! हमारे शरीरादि पदार्थों को आप ही बढ़ानेवाले हैं, "यजस्व" हमारे लिये विद्वानों का सत्कार, सब सज्जनों के सुखादि की संगति, विद्यादि गुणों का दान आप स्वयं करो, आप अपनी उदारता से ही हमको सब सुख दीजिये किञ्च हम लोग तो आपके प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं है, सर्वथा आपके अनुकूल वर्तमान नहीं कर सकते परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं, इससे हमको स्वकृपा-कटाक्ष से सुखी करें ।।३८।।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु ।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ।।३९।। यजु. ३६।२।।

व्याख्यान - हे सर्वसन्धायकेश्वर ! मेरे चक्षु (नेत्र), हृदय (प्राणात्मा), मन, बुद्धि, विज्ञान, विद्या और सब इन्द्रिय, इनके छिद्र, निर्बलता, राग, चाञ्चल्य यद्वा मन्दत्वादि विकार इनका निवारण (निर्दोषत्व) करके सत्यधर्मादि में स्थापन आप ही करो क्योंकि आप "बृहस्पति" (सबसे बड़े) हो, सो अपनी बड़ाई की ओर देख

के इस बड़े काम को आप अवश्य करें, जिससे हम लोग आप और आपकी आज्ञा के सेवन में यथार्थ तत्पर हों, मेरे सब छिद्रों को आप ही ढांकें, आप सब भुवनों के पति हैं इसलिये आप से वारंवार प्रार्थना हम लोग करते हैं कि सब दिन हम लोगों पर कृपादृष्टि से कल्याणकारक हों, हे परमात्मन् ! आपके विना हमारा कल्याणकारक कोई नहीं है, हमको आपका ही सब प्रकार का भरोसा है, सो आप ही पूरा करेंगे ॥३९॥

विश्वकर्मा विमनाऽ आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऽऋषीन् परऽ एकमाहुः ॥४०॥

यजु. १७।२६॥

व्याख्यान - सर्वज्ञ सर्वरचक ईश्वर "विश्वकर्मा" (विविधजगदुत्पादक) है तथा "विमनाः" विविध (अनन्त) विज्ञानवाला है, तथा "आद्विहाया" सर्वव्यापक और आकाशवत् निर्विकार अक्षोभ्य सर्वाधिकरण है, वही सब जगत् का "धाता" धारणकर्त्ता है "विधाता" विविध विचित्र जगत् का उत्पादक है तथा "परम, उत" सर्वोत्कृष्ट है "सन्दृक्" यथावत् सबके पाप और पुण्यों को देखनेवाला है, जो मनुष्य उसी ईश्वर की भक्ति, उसी में विश्वास और उसी का सत्कार (पूजा) करते हैं, उसको छोड़ के अन्य किसी को लेशमात्र भी नहीं मानते, उन पुरुषों को ही सब इष्ट सुख मिलते हैं, औरों को नहीं, वह ईश्वर अपने भक्तों को सुख में ही रखता है और वे भक्त सम्यक् स्वेच्छापूर्वक "मदन्ति" परमानन्द में ही सदा रहते हैं, दुःख को नहीं प्राप्त होते । वह परमात्मा एक अद्वितीय है, जिस परमात्मा के सामर्थ्य में 'सप्त' अर्थात् पंच प्राण, अन्तःकरण और जीव ये सब प्रलयविषयक कारणभूत ही रहते हैं, वही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, और प्रलय में निर्विकार आनन्दस्वरूप ही रहता है, उसी की उपासना करने से हम लोग सदा सुखी रह सकते हैं ॥४०॥

चतुः स्त्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः । अप द्वेषोऽअप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥४१॥

यजु. ३८।२०॥

व्याख्यान - हे महावैद्य ! सर्वरोगनाशकेश्वर ! चार कोणेवाली नाभि

(मर्मस्थान) ऋत (-रस) की भरी नैरोग्य और विज्ञान का घर "सप्रथाः" विस्तीर्ण सुखयुक्त आपकी कृपा से हों तथा आपकी कृपा से "विश्वायुः" पूर्ण आयु हो, आप जैसे सर्व-सामर्थ्य विस्तीर्ण हो, वैसे ही विस्तृत सुखयुक्त विस्तार सहित सर्वायु हमको दीजिये, हे शान्तस्वरुप ! हम "अपद्वेषः" द्वेषरहित आपकी कृपा से तथा "अपह्वरः" चलन (कम्पन) रहित हों, आपकी आज्ञा और आपसे भिन्न को लेशमात्र भी ईश्वर न मानें, यही हमारा व्रत है, इससे अन्य व्रत को कभी न मानें, किन्तु आपको "सश्चिम" सदा सेवें, यही हमारा परमनिश्चय है, इस परमनिश्चय की रक्षा आप ही कृपा से करें ।।४१।।

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तँ सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ।।४२।।

यजु. १७।२७।।

व्याख्यान - हे मनुष्यो ! जो अपना "पिता" (नित्य पालन करनेवाला) "जनिता" (जनक) उत्पादक "विधाता" सब मोक्ष सुखादि कामों का विधायक (सिद्धिकर्त्ता) "विश्वा" सब भुवन लोकलोकान्तर "धाम" अर्थात् स्थिति के स्थानों को यथावत् जाननेवाला सब जातमात्र भूतों में विद्यमान है, जो "देवा." दिव्य सूर्यादिलोक तथा और विद्वानों का नाम व्यवस्थादि करनेवाला एक अद्वितीय वही है, अन्य कोई नहीं, वही स्वामी और पितादि हम लोगों का है, इसमें शंका नहीं रखनी तथा उसी परमात्मा के सम्यक् प्रश्नोत्तर करने में विद्वान्, वेदादि शास्त्र और प्राणीमात्र प्राप्त हो रहे हैं क्योंकि सब पुरुषार्थ यही है कि परमात्मा, उसकी आज्ञा और उसके रचे जगत् का यथार्थ से निश्चय (ज्ञान) करना, उसी से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार प्रकार के पुरुषार्थ के फलों की सिद्धि होती है अन्यथा नहीं । इस हेतु से तन, मन, धन और आत्मा इनसे प्रयत्नपूर्वक ईश्वर के साहाय्य से सब मनुष्यों को धर्मादि पदार्थों की यथावत् सिद्धि अवश्य करनी चाहिये ।।४२।।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।४३।।

यजु. ३४।१।।

व्याख्यान - हे धर्मनिरुपद्रव परमात्मन् ! मेरा मन सदा "शिवसंकल्प" धर्म कल्याणसंकल्पकारी ही आपकी कृपा से हो, कभी अधर्मकारी न हो, वह मन कैसा है ? कि जागते हुए पुरुष का दूर दूर जाता-आता है, दूर जाने का जिसका स्वभाव ही है, अग्नि, सूर्यादि, श्रोत्रादि इन्द्रिय, इन ज्योतिप्रकाशकों का भी ज्योतिप्रकाशक है, अर्थात् मन के विना किसी पदार्थ का प्रकाश कभी नहीं होता। वह एक बड़ा चञ्चल वेगवाला मन आपकी कृपा से ही स्थिर, शुद्ध, धर्म्मात्मा, विद्यायुक्त हो सकता है "दैवम्" देव (आत्मा का) मुख्य साधक भूत, भविष्यत् और वर्तमानकाल का ज्ञाता है, वह आपके वश में ही है, उसको आप हमारे वश में यथावत् करें, जिससे हम कुकर्म्म में कभी न फसें, सदैव विद्या, धर्म्म और आपकी सेवा में ही रहें ।।४३।।

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ।।४४।।

यजु. १७।३१।।

व्याख्यान - हे जीवो ! जो परमात्मा इन सब भुवनों का बनानेवाला विश्वकर्मा है, उसको तुम लोग नहीं जानते हो, इसी हेतु से तुम "नीहारेण" अत्यन्त अविद्या से आवृत मिथ्यावाद नास्तिकत्व बकवाद करते हो, इससे दुःख ही तुमको मिलेगा, सुख नहीं। तुम लोग "असुतृपः" केवल स्वार्थसाधक प्राणपोषणमात्र में ही प्रवृत्त हो रहे हो "उक्थशासश्चरन्ति" केवल विषय-भोगों के लिये ही अवैदिककर्म करने में प्रवृत्त हो रहे हो और जिसने ये सब भुवन रचे हैं उस सर्वशक्तिमान् न्यायकारी परब्रह्म से उलटे चलते हो, अत एव उसको तुम नहीं जानते।

प्रश्न - वह ब्रह्म और हम जीवात्मा लोग ये दोनों एक हैं वा नहीं ?

उत्तर - "यद्युष्माकमन्तरं बभूव" ब्रह्म और जीव की एकता वेद और युक्ति से सिद्ध कभी नहीं हो सकती क्योंकि जीव ब्रह्म का पूर्व से ही भेद है। जीव अविद्या आदि दोषयुक्त है, ब्रह्म अविद्यादि दोषयुक्त नहीं है, इससे यह निश्चित है कि जीव और ब्रह्म एक न थे, न होंगे और न हैं, किंच व्याप्यव्यापक, आधाराधेय, सेव्यसेवकादि सम्बन्ध तो जीव के साथ ब्रह्म का है, इससे जीव ब्रह्म की एकता मानना किसी मनुष्य को योग्य नहीं ।।४४।।

भग एव भगवाँ२॥ऽस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥४५॥

यजु. ३४।३८॥

व्याख्यान - हे सर्वाधिपते ! महाराजेश्वर ! आप "भग" परमैश्वर्यस्वरूप होने से भगवान् हो, हे (देवाः) विद्वानो ! "तेन" (भगवता प्रसन्नेश्वरसहायेन) उस भगवान् प्रसन्न ईश्वर के सहाय से हम लोग परमैश्वर्ययुक्त हों, हे "भग" परमेश्वर सर्व संसार "तन्त्वा" उन आपको ही ग्रहण करने को अत्यन्त इच्छा करता है क्योंकि कौन ऐसा भाग्यहीन मनुष्य है जो आपको प्राप्त होने की इच्छा न करे, सो आप हमको प्रथम से प्राप्त हों फिर कभी हमसे आप और ऐश्वर्य अलग न हो । आप अपनी कृपा से इसी जन्म में परमैश्वर्य्य का यथावत् भोग हम लोगों को करावें और आपकी सेवा में हम नित्य तत्पर रहें ॥४५॥

गणाना त्वा गणपतिँ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिँ हवामहे
निधीनां त्वा निधिपतिँ हवामहे वसो मम ।
अहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥४६॥ यजु. २३।१९॥

व्याख्यान - हे समूहाधिपते ! आप मेरे सब समूहों के पति होने से आपको 'गणपति' नाम से ग्रहण करता हूं तथा मेरे प्रिय कर्मचारी पदार्थ और जनों के पालक भी आप ही हैं, इससे आपको 'प्रियपति' मैं अवश्य जानूं, इसी प्रकार मेरी सब निधियों के पति होने से आपको मैं निश्चित 'निधिपति' जानूं, हे "वसो" सब जगत् को जिस सामर्थ्य से उत्पन्न किया है, उस अपने सामर्थ्य का धारण और पोषण करनेवाला आपको ही मैं जानूं । सबका कारण आपका सामर्थ्य है, यही सब जगत् का धारण और पोषण करता है, यह जीवादि जगत् तो जन्मता और मरता है परन्तु आप सदैव अजन्मा और अमृतस्वरूप हैं । आपकी कृपा से अधर्म, अविद्या, दुष्टभावादि को "अजानि" दूर फेकूं तथा हम सब लोग आपकी ही "हवामहे" अत्यन्त स्पर्धा (प्राप्ति की इच्छा) करते हैं, सो आप अब शीघ्र हमको प्राप्त होओ, जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी ठिकाना न लगेगा ॥४६॥

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥४७॥ यजु. १।५॥

व्याख्यान - हे सच्चिदानन्द स्वप्रकाशरूप ईश्वराग्ने ! ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूंगा, सो इस व्रत को आप कृपा से सम्यक् सिद्ध करें तथा मैं अनृत अनित्य देहादि पदार्थों से पृथक् हो के इस यथार्थ सत्य जिसका कभी व्यभिचार विनाश नहीं होता उस विद्यादि लक्षण धर्म को प्राप्त होता हूं, इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें, जिससे मैं सभ्य, विद्वान्, सत्याचरणी आपकी भक्तियुक्त धर्मात्मा होऊं ॥४७॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४८॥
यजु. २५।१३॥

व्याख्यान - हे मनुष्यो ! जो परमात्मा अपने लोगों को "आत्मदाः" आत्मा का देनेवाला तथा आत्मज्ञानादि का दाता है, जीवप्राणदाता तथा "बलदाः" त्रिविध बल-एक मानस विज्ञानबल; द्वितीय इन्द्रियबल अर्थात् श्रोत्रादि की स्वस्थता, तेजोवृद्धि; तृतीय शरीरबल महापुष्टि, दृढाङ्गता और वीर्यादि वृद्धि इन तीनों बलों का जो दाता है, जिसके "प्रशिषम्" अनुशासन (शिक्षामर्यादा) को यथावत् विद्वान् लोग मानते हैं, सब प्राणी और अप्राणी जड़ चेतन विद्वान् वा मूर्ख उस परमात्मा के नियमों को कोई कभी उल्लङ्घन नहीं कर सकता, जैसे कि कान से सुनना, आँख से देखना, इसको उलटा कोई नहीं कर सकता है, जिसकी छाया-आश्रय ही अमृत विज्ञानी लोगों का मोक्ष कहाता है तथा जिसकी अछाया (अकृपा) दुष्ट जनों के लिये वारम्वार मरण और जन्मरूप महाक्लेशदायक है । हे सज्जन मित्रो ! वही एक परमसुखदायक पिता है, आओ अपने सब मिल के प्रेम, विश्वास और भक्ति करें, कभी उसको छोड़ के अन्य को उपास्य न मानें, वह अपने को अत्यन्त सुख देगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥४८॥

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथोऽन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शंय्योः शंय्योः ॥४९॥

यजु. ३।४३॥

व्याख्यान - हे पश्वादिपते ! महात्मन् ! आपकी ही कृपा से उत्तम उत्तम गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, बकरी, भेड़ तथा उपलक्षण से अन्य सुखदायक सब पशु और अन्न, सर्वरोगनाशक औषधियों का उत्कृष्ट रस "नः" हमारे घरों में नित्य स्थिर (प्राप्त) रख, जिससे किसी पदार्थ के विना हमको दुःख न हो । हे विद्वानो ! "वः" (युष्माकम्) तुम्हारे सङ्ग और ईश्वर की कृपा से क्षेमकुशलता और शान्ति तथा सर्वोपद्रव-विनाश के लिये "शिवम्" मोक्ष-सुख "शग्मम्" और इस संसार के सुख को मैं यथावत् प्राप्त होऊं। मोक्ष-सुख और प्रजा-सुख इन दोनों की कामना करनेवाला जो मैं हूं, उन मेरी उक्त दोनों कामनाओं को आप यथावत् शीघ्र पूरी कीजिये, आपका यही स्वभाव है कि अपने भक्तों की कामना अवश्य पूरी करना ॥४९॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥५०॥

यजु. २५।१८॥

व्याख्यान - हे सुख और मोक्ष की इच्छा करनेवाले जनो ! उस परमात्मा को ही "हूमहे" हम लोग प्राप्त होने के लिये अत्यन्त स्पर्धा करते हैं कि उसको हम कब मिलेंगे क्योंकि वह ईशान (सब जगत् का स्वामी) है और ईषण (उत्पादन) करने की इच्छा करनेवाला है । दो प्रकार का जगत् है - चर और अचर, इन दोनों प्रकार के जगत् का पालन करनेवाला वही है, "धियञ्जिन्वम्" विज्ञानमय, विज्ञानप्रद और तृप्तिकारक ईश्वर से अन्य कोई नहीं है, उसको "अवसे" अपनी रक्षा के लिये हम स्पर्धा (इच्छा) से आह्वान करते हैं । जैसे वह ईश्वर "पूषा" हमारे लिये पोषणप्रद है, वैसे ही "वेदसाम्" धन और विज्ञानों की वृद्धि का "रक्षिता" रक्षक है तथा "स्वस्तये" निरुपद्रवता के लिये हमारा "पायुः" पालक वही है और "अदब्धः" हिंसारहित है । इसलिये ईश्वर जो निराकार, सर्वानन्दप्रद है हे मनुष्यो ! उसको मत भूलो, विना उसके कोई सुख का ठिकाना नहीं है ॥५०॥

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
अस्माकँ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः ॥५१॥

यजु. २।१०॥

व्याख्यान - हे इन्द्र परमैश्वर्यवन् ईश्वर! "मयि" मुझमें विज्ञानादि शुद्ध इन्द्रिय "रायः" और उत्तम धन को "मघवानः" परम धनवान् आप "सचन्ताम्" सद्यः प्राप्त करो। हे सर्व काम पूर्ण करनेवाले ईश्वर! आपकी कृपा से हमारी आशा सत्य ही होनी चाहिये, (पुनरुक्त अत्यन्त प्रेम और त्वरा द्योतनार्थ है) हे भगवन्! हम लोगों की इच्छा आप शीघ्र ही सत्य कीजिये, जिससे हमारी न्याययुक्त इच्छा के सिद्ध होने से हम लोग परमानन्द में सदा रहें ॥५१॥

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयाशिषँ स्वाहा ॥५२॥ यजु. ३२।१३॥

व्याख्यान - हे सभापते विद्यामय न्यायकारिन् सभासद् सभाप्रिय! सभा ही हमारा राजा न्यायकारी हो, ऐसी इच्छावाले आप हमको कीजिये, किसी एक मनुष्य को हम लोग राजा कभी न बनावें किन्तु (सभा से ही सुखदायक) आपको ही हम सभापति सभाध्यक्ष राजा मानें। आप अद्भुत आश्चर्य विचित्र शक्तिमय हैं तथा प्रियस्वरूप ही हैं। "इन्द्र" जो जीव उसको कमनीय (कामना के योग्य) आप ही हैं, "सनिम्" सम्यक् भजनीय और सेव्य भी जीवों के आप ही हैं। "मेधा" अर्थात् विद्या सत्यधर्मादि धारणावाली बुद्धि को हे भगवन्! मैं याचना हूँ, सो आप कृपा करके मुझको देओ "स्व." यही स्वकीय वाक् "आह" कहती है कि एक ईश्वर से भिन्न कोई जीवों को सेव्य नहीं है। यही वेद में ईश्वराज्ञा है, सो सब मनुष्यों को मानना योग्य है ॥५२॥

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥५३॥

यजु. ३२।१४॥

व्याख्यान - हे सर्वज्ञाग्ने परमात्मन्! जिस विज्ञानवती यथार्थ धारणावाली बुद्धि को देवसमूह (विद्वानों के वृन्द) "उपासते" (धारण करते) हैं तथा यथार्थ

पदार्थविज्ञानवाले "पितरः" जिस बुद्धि के उपाश्रित होते हैं, उस बुद्धि के साथ इसी समय कृपा से मुझको मेधावी कर। "स्वाहा" इसको आप अनुग्रह और प्रीति से स्वीकार कीजिये, जिससे मेरी जड़ता सब दूर हो जाय ॥५३॥

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥५४॥

यजु. ३२।१५॥

व्याख्यान - हे सर्वोत्कृष्टेश्वर! आप "वरुणः" वर (वरणीय) आनन्दस्वरूप हो, कृपा से मुझको मेधा सर्वविद्यासम्पन्न बुद्धि दीजिये तथा "अग्निः" विज्ञानमय विज्ञानप्रद "प्रजापतिः" सब संसार के अधिष्ठाता पालक "इन्द्रः" परमैश्वर्यवान् "वायुः" विज्ञानवान् अनन्तबल "धाता" तथा सब जगत् का धारण और पोषण करनेवाले आप मुझको अत्युत्तम मेधा (बुद्धि) दीजिये ॥५४॥

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥५५॥

यजु. ३२।१६॥

व्याख्यान - हे महाविद्य महाराज सर्वेश्वर! मेरा ब्रह्म (विद्वान्) और क्षत्र (राजा तथा राज्य, महाचतुर न्यायकारी शूरवीर राजादि क्षत्रिय) ये दोनों आपकी अनन्त कृपा से यथावत् (अनुकूल) हों "श्रियम्" सर्वोत्तम विद्यादि लक्षणयुक्त महाराज्य श्री को हम प्राप्त हों। हे "देवाः" विद्वानो! दिव्य ईश्वर गुण परमकृपा आदि, उत्तम विद्यादि लक्षण समन्वित श्री को मुझमें अचलता से धारण कराओ, उसको मैं अत्यन्त प्रीति से स्वीकार करूं और उस श्री को विद्यादि सद्गुण वा सर्व-संसार के हित के लिये तथा राज्यादि प्रबन्ध के लिये व्यय करूं ॥५५॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राचकाचार्याणां श्रीयुत विरजानन्द
सरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
विरचित आर्याभिविनये द्वितीयः प्रकाशः सम्पूर्णः ॥
समाप्तश्चाऽयङ् ग्रन्थः ॥

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द-देशभक्ति

(स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की राष्ट्रीय भावना)

(१) हे जगदीश !... दिव्यगुणों के सह वर्तमान हमारे हृदय में आप प्रकट हों, सब जगत् में भी प्रकाशित हों जिससे हम और हमारा राज्य दिव्यगुणयुक्त हो। (आर्याभिविनय १/५)

(२) हे कृपानिधे ! हमको विद्या, शौर्य्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविध धन ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, स्वदेश सुख संपादनादि गुणों से सब नर देह धारियों से अधिक उत्तम करो। (आर्याभिविनय १/१६)

(३) हे कृपासिन्धो भगवन् ! हम पर सहायता करो जिससे सुनीतियुक्त हो के हमारा स्वराज्य अत्यंत बढ़े। (आर्याभिविनय १/१८)

(४) हे इन्द्र मधवन् महाधनेश्वर ! हमारे शत्रुओं के वीर्य्य पराक्रमादि को प्रभग्न, रुग्ण करके नष्ट कर दे, हमारे लिए चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को सुख से प्राप्त कर अर्थात् आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को प्राप्त हो। (आर्याभिविनय १/४३)

(५) हे रुद्र भगवन् आपकी आज्ञा का प्रणय अर्थात् उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होके वीरों के चक्रवर्ती राज्य को आपके अनुग्रह से प्राप्त हों। (आर्याभिविनय १/४५)

(६) हे महाराजाधिराज परब्रह्मन् ! अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिए शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों। (आर्याभिविनय २/३१)

(७) हे महाविद्य महाराज सर्वेश्वर ! मेरा ब्रह्म (विद्वान्) और क्षत्र (राजा, राज्य, महाचतुर, न्यायकारी, शूरवीर राजादी क्षत्रिय) ये दोनों आपकी अनन्त कृपा से यथावत् अनुकूल हों। सर्वोत्तम विद्यादि लक्षणयुक्त महाराज्य श्री को हम प्राप्त हों। (आर्याभिविनय २/५५)

(८) हे परमेश्वर ! आपके अनुग्रह से हम लोग चक्रवर्ती राज्य और शूरवीर पुरुषों की सेना से युक्त हों । (ऋ.भा.भू.)

(९) हे राज्य के देने वाले परमेश्वर ! आप ही राज्यसुख के परम कारण हैं । आप ही राज्य के जीवन हेतु हैं तथा क्षत्रियवर्ण के राज्य का कारण और जीवन सभा ही है । हे जगदीश्वर ! सब प्रजा आपको छोड़ के किसी दूसरे को अपना राजा कभी न माने और आप भी हम लोगों को कभी मत छोड़िये ।

राष्ट्रीय सुख का उपाय

जिस देश में उत्तम विद्वान् ब्राह्मण विद्या सभा और राजसभा विद्वान् शूरवीर क्षत्रिय लोग ये सब मिलके राजकामों को सिद्ध करते हैं, वही देश धर्म और शुभ क्रियाओं से संयुक्त हो के सुख को प्राप्त होता है । जिस देश में परमेश्वर की आज्ञापालन और अग्निहोत्रादि सत्क्रियाओं से वर्तमान विद्वान् होते हैं वही देश सब उपद्रव्यों से रहित हो के अखण्ड राज्य नित्य भोगता है । (ऋ.भा.भू.) (राज्यप्रजा धर्म विषय)

सकलन कर्ता

स्वामी शान्तानन्द सरस्वती

(पूर्व अध्यापक)
दर्शन योग महाविद्यालय
आर्य वन रोजड़ (गुजरात)
आचार्य, सन्त ओधवराम वैदिक गुरुकुल
भवानीपुर (कच्छ)
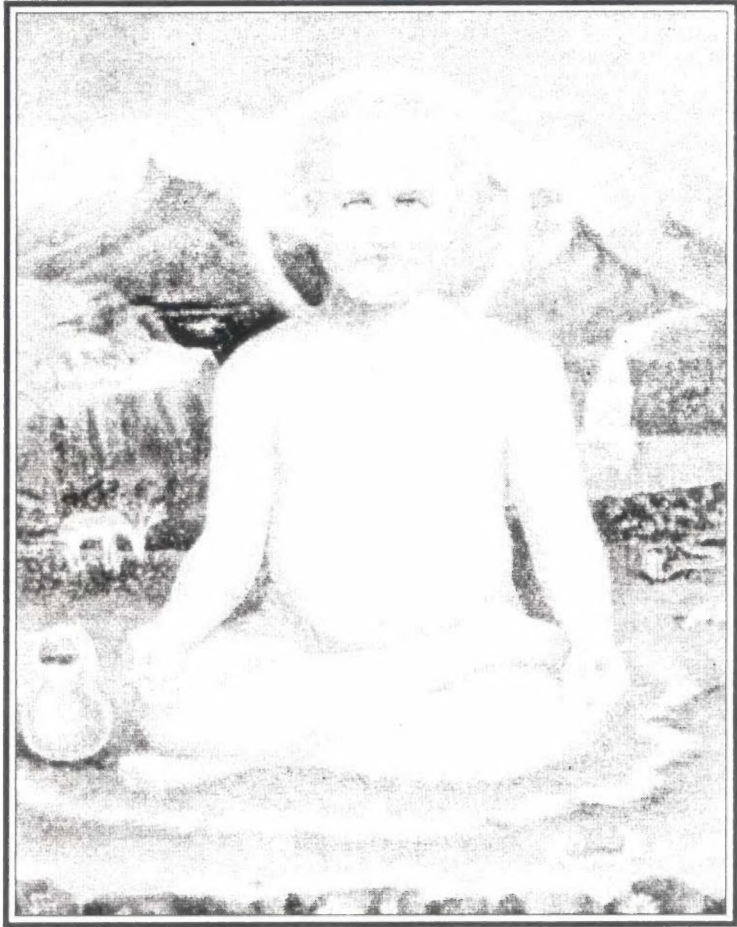
महर्षि दयानन्द सरस्वती ईश्वर का ध्यान करते हुए ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित

आर्योद्देश्य रत्नमाला पुस्तक में - स्तुति प्रार्थना उपासना

(१) स्तुति : जो ईश्वर वा किसी दूसरे पदार्थ के गुणगान, कथन, श्रवण और सत्य भाषण करना है वह स्तुति कहलाती है।

(२) प्रार्थना : अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए परमेश्वर वा किसी सामर्थ्यवाले मनुष्य का सहाय लेने को प्रार्थना कहते हैं।

(३) उपासना : जिसके द्वारा ईश्वर ही के आनन्दस्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना है वह उपासना कहाती है।

सौजन्य

वानप्रस्थ प्रताप आर्य

वानप्रस्थ साधक आश्रम, आर्यवन रोजड़ (गुजरात)

श्री देवजी लीलाधर भानुशाली

स्व. माताजी रामाबहन देवजी भानुशाली

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रंथ में वर्णित महर्षि दयानन्द की उपासना पद्धति

जब जब मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना करना चाहें तब तब इच्छा के अनुकूल एकान्त स्थान में बैठकर अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें तथा सब इन्द्रिय और मन को सच्चिदानन्द आदि लक्षणवाले अन्तर्यामी अर्थात् सबमें व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छी प्रकार से लगाकर सम्यक चिन्तन करके उसमें अपने आत्मा को नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को वारंवार करके, अपने आत्मा को भलीभांति से उसमें लगा दें।

ईश्वर की भक्ति कैसे करें स्वामी दयानन्द बतलाते हैं

जो ईश्वर का ओंकार नाम है सो पिता-पुत्र के सम्बन्धके समान है और यह नाम ईश्वर को छोड़ के दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता। ईश्वर के जितने नाम हैं, उनमें से ओंकार सबसे उत्तम नाम है। इसलिये इसी नाम का जप अथति् स्मरण और उसी का अर्थ विचार सदा करना चाहिये कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो। जिससे उसके हृदय में परमात्मा का प्रकाश और परमेश्वर की प्रेम भक्ति सदा बढ़ती जाय।

ईश्वर भक्ति के लाभ -

अन्तर्यामी परमात्मा की प्राप्ति और उसके (उपासक के) अविद्यादि क्लेशों तथा रोगरूप विघ्नों का नाश हो जाता है।